तरुतले

(भाग 1)

(स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज
से
संबंधित संस्मरणों का संकलन)

प्राकृत भारती पुष्प 199

तरुतले

(भाग 1)

(स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से संबंधित संस्मरणों का संकलन)

संकलन

शांतिस्वरूप गुप्ता

सम्पादन

मुश्ताक़ अहमद 'राकेश'

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग

प्रकाशक:

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक,
प्राकृत भारती अकादमी
१३-ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-302017
दूरभाष : 0141-2524827

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग
१३-ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-302017
दूरभाष : 0141-2524827

द्वितीय संस्करण 2007

ISBN-13-978-81-89698-20-1

मूल्य : 40/- रुपये

© प्रकाशकाधीन

लेजर टाइप सेटिंग
श्याम अग्रवाल,
प्राकृत भारती अकादमी

मुद्रक:
राज प्रिन्टर्स, जयपुर
फोन नं. 0141-2621774

तरुतले/शांतिस्वरूप गुप्ता/2007

प्रकाशकीय

इस पुस्तक का शीर्षक '**तरुतले**' रूपक भी है और वास्तविकता भी। वास्तविकता यह है कि महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर में सघन वृक्षों की छाँह में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सिद्धांतों पर चर्चा वर्षों से हो रही है। चर्चा में उनके जीवन से संबंधित कई घटनाएँ व संस्मरण भी स्वत: ही उभरते हैं। इससे उनका दर्शन सहजता व सरलता से आत्मसात् हो जाता है। इन घटनाओं व संस्मरणों का संकलन ही '**तरुतले**' है। रूपक इस तरह कि महान् संत एक विशाल तरु की तरह होते हैं। उनकी छांह में जो भी रहेगा उसे पत्तों की छाया, फूलों की सुगंध व फलों का आस्वादन स्वत: मिल जाएगा।

तरु के तले वर्षों से हो रही इस संगत में प्रमुख हैं श्री कन्हैयालाल लोढ़ा। आप जैन आगमों के प्रकांड विद्वान् हैं। बौद्ध विपश्यना के विख्यात साधक हैं। अन्य भारतीय दर्शनों का भी आपका अध्ययन बहुत गहरा है। उनके साथ श्री हरिशरणागतजी, जिन्होंने स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सिद्धान्तों को अपनाया व दीक्षा ली, भी उतने ही प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं। और भी समर्पित साधक श्री कृष्णलाल गुप्ता, ओमप्रकाशन वर्मा, माथुर साहब, श्यामकांत शर्मा, शांतिस्वरूप गुप्ता आदि प्रबुद्ध-जन व्यापक रूप से नियमित पधारते हैं।

आरम्भ में तो मैं एक श्रोता के रूप में रहा। मैं स्वामीजी के दर्शन व साहित्य के विषय में अपनी कोई राय नहीं बना पाया। परन्तु ज्यों-ज्यों मैंने गहराई से सुना, तो पाया कि यह तो वर्तमान समय के लिए रूढ़ियों व ग्रंथियों से मुक्त जीवंत-दर्शन है जिसमें किसी भी पंथ, सम्प्रदाय व धर्म का खंडन-मंडन नहीं बल्कि प्रकृति के नियमों के अनुरूप विज्ञान व विवेकसम्मत दर्शन है। चर्चा में स्वामीजी के सान्निध्य में रहे सज्जन उनके संस्मरण सुनाते तो सबकी तरह मुझे भी बहुत रोचक व प्रभावी

लगा। सबकी राय बनी कि इनका प्रकाशन हो जाय तो आने वाली पीढ़ी, विशेष रूप से युवाओं के लिए ये बड़े प्रभावी हो सकते हैं। उन्हें जीवन-गठन के लिए जीवंत, रोचक व उपयोगी सामग्री मिल सकती है। श्री शांतिस्वरूप गुप्ता ने इनके संकलन का भार उठा लिया।

श्री टीकमचंद हीरावत व उनके सुपुत्र श्री राजीव हीरावत भी स्वामीजी के साहित्य में विशेष रुचि रखते हैं। आपका भी मत यही है कि सम्प्रदाय से ऊपर उठते हुए उनका दर्शन व साहित्य जीवन के गठन व परिमार्जन के लिए बहुत ही उपयोगी है। अतः उनकी तीव्र मनोकामना है कि यह जल्दी से जल्दी समाज में फैलना चाहिए। आपने इस पुस्तक के प्रकाशन का आर्थिक भार अपने ऊपर ले लिया। संगत के सभी सदस्यगण व पाठकगण उनके इस सहयोग के लिए आभार व्यक्त करते हैं। प्राकृत भारती अकादमी भी उनकी आभारी है।

इस संकलन में मानव सेवा संघ के साहित्य, प्रोफेसर केशरीकुमार द्वारा प्रकाशित साहित्य व कु. गंगा डागा द्वारा लिखे लेखों का भी सहयोग लिया गया है जिसके लिए प्राकृत भारती अकादमी उनके प्रति आभार व्यक्त करती है।

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

भूमिका

'तरुतले' की कहानी आरंभ होती है आज से लगभग ४-५ वर्ष पूर्व। श्री टीकमचंद हीरावत के साथ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा (गुरुजी) साधना भवन, बजाजनगर, जयपुर से सटे हुए पार्क में वृक्षों के नीचे बैठकर रोजाना **'मूक सत्संग और नित्य योग'** पुस्तक का स्वाध्याय, व्याख्या व विचार-विनिमय करते थे। मैं किसी कार्यवश लोढ़ा साहब से मिलने अचानक वहां पहुंचा। देखा, यहां तो वृक्षों की छाँव तले स्वामी शरणानंदजी के दर्शन पर चर्चा चल रही है। लगभग ८-१० सज्जन थे। चर्चा में संस्कृत, हिन्दी तथा दर्शन के विद्वान डॉ. नरेन्द्र भानावत व एक मुसलमान साधक भाई भी शिरकत कर रहे हैं। मेरा भी उनके इस कार्यक्रम के प्रति आकर्षण बढ़ा और मैंने लोढ़ाजी को कसकर पकड़ लिया।

नित्य नियमित चलने वाले इस कार्यक्रम की सुगंध फैली तो और भी जिज्ञासु, मुमुक्षु भाई जुड़ते गए। आज तो स्थिति यह है कि यह कार्यक्रम प्रतिदिन का बन गया।

इस पुस्तक में स्वामी श्री शरणांनदजी महाराज से संबंधित नीतिगत व दार्शनिक घटनाओं व उनके विचारों से संबंधित संस्मरणों का संकलन, जो उनके सान्निध्य में रहे हुए सज्जनों ने समय समय पर तरुतले सुनाए हैं, को एकत्र करके साधक समाज के लाभार्थ प्रकाशित कियाजा रहा है।

मैं तो इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि-

मुझे तरु तले विश्राम मिला-

हरिशरणागत
जयपुर

श्रद्धा सुमन

(१)

जल रही थी मेरे मन में, आग सी अभिमान की।
और चलती आँधियाँ थीं, मान की अपमान की।।
बहती थीं धारायें मन में, राग की और द्वेष की।
बात होती थी सदा अधिकार की कर्त्तव्य की।।

(२)

किन्तु जब से मैं जुड़ा हूँ, 'तरुतले' सत्संग से।
बहने लगी मन में हवा, शाँति की अनुराग की।।
बोझ मन का घट रहा है, बढ़ रही है रोशनी।
जब से शरणागत हुआ, स्वामी शरणानन्द की।।

चाह

चाह यही, यूँ ही बहे, सत्संग गंगा धार।
साधक सभी गोता लगा, पायें शाँति अपार।।
आये मन विश्राम में, पा अनन्त का प्यार।
लक्ष्य पा जायें सभी, हो जीवन उद्धार।।

ओम प्रकाश वर्मा
(एक साधक)

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	मसीहा मेरा सगा भतीजा	1
2.	आश्रम में रहने का तरीका	2
3.	कुदरत का कानून ही कुरान है	3
4.	लाइफ है लाइफ	4
5.	शार्टकट	5
6.	फुटबाल	6
7.	उनकी प्रसन्नता के लिए	7
8.	ठोकर तगड़ी नहीं लगी	8
9.	दो तो यहीं मौजूद हैं	9
10.	गलत प्रश्न	10
11.	भगवान् ऐसे नहीं मिलेंगे	11
12.	गुरु–तत्त्व तो एक ही होता है	12
13.	तेरी आँखें किस काम आयेंगी?	13
14.	श्रुति का ज्ञान, पाठशाला एवं पाठ	14
15.	फक्कड़ जो थे	15
16.	वो बड़ा बेवकूफ है	16
17.	जानी हुई बुराईयों का त्याग करो	17
18.	सातवाँ दर्शन	18
19.	मुझे सुनने नहीं, आपको देखने आते हैं	19
20.	गोपी–प्रेम	20
21.	भव–रोग का उपचार	21
22.	आवश्यकता से पूर्व आवश्यक वस्तु मिल जायगी	22

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
23.	धिक्कार है मुझे – कि	23
24.	देख लिया तुमने संसार का स्वरूप	24
25.	ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा	25
26.	हमारा मौलिक प्रश्न	26
27.	सच्चा दोस्त	27
28.	सत्य का अधिकारी	28
29.	भगवान् के यहाँ स्थान	29
30.	लोग कितनी भावना से वस्तु लाते हैं	31
31.	स्वामीजी की जीवनी	32
32.	तुम्हारी नीयत क्या है?	33
33.	ईमानदार बने रहो, बस! काम बन जाएगा	34
34.	भक्त का मान न टलते देखा	36
35.	सो स्वाद तो कहीं नहीं था	37
36.	अनंत के प्रतिरूप	39
37.	कुआं प्यासे के पास गया	40
38.	मंत्र–दीक्षा तथा अभयदान	41
39.	गुलामों को ऐसी हंसी नहीं आया करती	42
40.	दिव्य प्रेम का प्रक्षेपण	43
41.	भविष्य तुम्हारा उज्ज्वल हो जाएगा	45
42.	अहं पर चोट	46
43.	करुणा और प्रेम का दिव्य समन्दर	47
44.	व्यथा व बेबसी	48
45.	व्यक्तिगत हित व आत्मसुख	49
46.	दूसरों के अधिकार की रक्षा	50
47.	यह तो बेवकूफवाद है	51
48.	बाल सेवाही प्रभु पूजा	52
49.	पीर हरो हरि, पीर हरो	53
50.	कोई और नहीं, कोई गैर नहीं	54
51.	कहो यार! कैसी कही?	55

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
52.	तेरी बिकी हुई जिन्दगी लेकर क्या करूँगा?	56
53.	उन्हें भी मिलता ईश्वर ही है	57
54.	ठोकर से ठाकुर	58
55.	देश नेतृत्वविहीन हो जाएगा	59
56.	स्नेह और वात्सल्य का चमत्कार	60
57.	गुड़ खाने की आदत और मैं	62
58.	उसीको मैं ईश्वर कहता हूँ	63
59.	जागृत स्थिति में सुषुप्तिवत्	64
60.	मैं कृतकृत्य पाता हूँ – अपने आपको	67
61.	यह मन, है क्या?	68
62.	अपना मूल्य संसार से कभी नहीं घटाना	70
63.	शरणानंद का दर्शन	72
64.	विचारों का नाश नहीं होगा, क्रांति आएगी, जरूर आएगी	74
65.	बड़ा ही पुनीत संयोग	75
66.	होनहार बिरवान के होत चीकने पात	77
67.	स्वामी शरणानंद (एक परिचय)	93
68.	जीवन–दर्शन (संतवाणी)	104

❖❖❖

मसीहा मेरा सगा भतीजा

(1)

स्वामीजी महाराज एक बार ट्रेन में बैठे थे। ईसाई मत के एक पादरी साहब भी वहाँ आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने श्री महाराजजी से पूछा, "क्या आप मसीहा को जानते हैं?" स्वामीजी महाराज ने सहज भाव से उत्तर दिया, "जी हाँ, जानता हूँ।" पादरी साहब ने फिर प्रश्न किया कि "मसीहा के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?" इस प्रश्न को सुनकर बड़ी प्रसन्नता एवं विश्वास के साथ श्री महाराज जी ने कहा, "भाई महीसा खुदा के पुत्र हैं? मैं खुदा का दोस्त हूँ। इस तरह मसीहा मेरा सगा भतीजा है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। वह मुझे बहुत प्यारा लगता है।" स्वामीजी महाराज भगवान् से मित्रता का सम्बन्ध मानते थे। एक गेरूआ वस्त्रधारी संन्यासी मसीहा को अपना सगा सम्बन्धी मानता है और आत्मीयता के नाते प्यार करता है, ऐसे सम्बन्ध की कल्पना भी पादरी साहब नहीं कर सकते होंगे। वे श्री महाराजजी का उत्तर सुनकर स्तम्भित रह गये।

श्री महाराजजी के निकट सम्पर्क में आने वाले अनेक भाई बहिन एक अज्ञात मिठास के आभास से आकर्षित होकर चुपचाप मंत्रमुग्ध की भाँति उनके पास बैठे रहते थे। सुनने वाले ईश्वरवादी साधक अपने आपको भूल जाते थे। उनकी अहं शून्य वाणी में ज्ञान और प्रेम की अजस्र धारा सहज ही प्रवाहित होती रहती थी, जिसे सुनकर बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ कहते थे और आज भी कह रहे हैं कि **वर्षों तक ग्रन्थों के अध्ययन से भी दर्शन के जो गूढ़ रहस्य समझ में नहीं आते थे, वे सब इन बे-पढ़े लिखे संत की वाणी से स्पष्ट हो गये।**

- हरिशरणागत

❖❖❖

आश्रम में रहने का तरीका

(2)

बात वर्ष १९६३ या १९६४ की है। सुप्रसिद्ध खादी सेवक श्री रामेश्वरजी अग्रवाल स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के मानव सेवा संघ, वृंदावन आश्रम में सपत्नीक रहते थे। स्वामीजी महाराज ने एक दिन उनकी धर्मपत्नी (शिवदेवी माताजी) से कहा, 'माताजी! आपके तो जयपुर में ही मानव सेवा संघ का इतना बड़ा आश्रम (प्रेम निकेतन आश्रम) है। आप उसे क्यों नहीं संभालती? वहाँ पर भी तो आपके जैसे बुजुर्ग की आवश्यकता है।'

माताजी ने कहा, 'महाराज! मुझे तो आश्रम में रहना आता नहीं, मैं कैसे संभालूं?'

स्वामी जी ने कहा, 'माताजी! आश्रम में रहने का तरीका मैं बताता हूँ। आपका बेटा घनश्याम आश्रम में आवे तो उसे तो आप देना छाछ का गिलास और कोई अतिथि या साधक आवे, उसे देना दूध का गिलास।'

- ***शांतिस्वरूप गुप्ता***

❖❖❖

कुदरत का कानून ही कुरान है

(3)

लोढ़ा साहब के सान्निध्य में साधना-भवन में चलने वाले शरणानंदजी महाराज के सत्संग-स्वाध्याय के कार्यक्रम के प्रारंभिक दिनों में एक मुस्लिम साधक भी नित्य पधारते थे। किसी ने उनसे पूछ लिया कि यहाँ पर कुरान पर तो चर्चा होती नहीं फिर आप क्या सुनने आते हैं? उनका उत्तर था कि यहाँ जो चर्चा होती है वह कुदरत के कानून की ही चर्चा होती है। कुदरत का कानून ही कुरान है। जिसे मैं भी सुनने आ जाता हूँ।

- हरिशरणागत

❖❖❖

लाइफ है लाइफ

(4)

२० वीं सदी में विश्व में कई दार्शनिक, सिद्ध साधक हुए। उनमें एक स्वामी श्री शरणानन्दजी थे, जे. कृष्णमूर्ति भी थे। दोनों ही अपने-अपने मार्गों से आध्यात्मिक उत्तुंगता पर पहुँचे थे। कुछ जिज्ञासु दोनों से प्रभावित थे। उनमें से कुछ के मन में यह विचार आया कि दोनों की भेंट कराई जाये। कुछ ने सोचा कि इसका परिणाम संत कबीर व संत फरीद के मिलन पर मौन संवाद के रूप जैसा होगा। आपका विचार था कि ऐसी बैठक से आध्यात्मिक फूलों की झड़ी लग जाएगी। भाग्यवश दोनों का सम्मिलन हुआ। अद्‌भुत घटना थी।

शरणानन्दजी ने चर्चा शुरू की। कहा —— कृष्णमूर्तिजी! आप हर वस्तु का निषेध करते हैं तो फिर क्या अभाव की सत्ता स्वीकार करते हैं?

कृष्णमूर्तिजी ने तपाक से कहा, 'नहीं! नहीं! लाइफ है लाइफ, जीवन है।' स्वामीजी ने पूछा, 'जिसे आप जीवन कहते हैं, उसे मैं परमात्मा कहूं तो आपको कुछ आपत्ति है?'

कृष्णमूर्तिजी मौन हो गए। लगता है यह उनकी परोक्ष स्वीकृति थी क्योंकि कहते हैं, 'मौनं स्वीकृति लक्षणं'।

- ***हरिशरणागत***

❖❖❖

शॉर्टकट

(5)

अब अंतिम पाठ जो मिला वह भी सुन लीजिए। पूज्य महाराजजी ने शरीर छोडा २५ दिसम्बर १६७४ (क्रिसमस डे) को। उससे २०-२५ दिन पहले मैं भरतपुर से वृन्दावन दर्शन को गया था। भगतजी के साथ जाता ही रहता था बीमारी का हालचाल लेने। स्वामीजी और पापा तख्त के पास बैठे थे। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं था। चरण स्पर्श किया, तो महाराज बोले, कौन है? कौन है? "मैंने कहा महाराज! मैं ..... भगतजी के साथ आया हूँ।" अच्छा-अच्छा पूछो क्या प्रश्न है? "महाराज! आपका शरीर बीमार है, ऐसे में क्या पूछूँ?" तो बोले - "अरे! शरीर तो शरारत करता ही रहता है, तुम अपना काम बना लो"। मैं उन दिनों सत्संग में जाता, तो मेरा एक ही प्रश्न रहता था कि "शॉर्टकर्ट" चाहिए। उस समय भी वही याद आ गया। मैंने कहा, "महाराज! मंजिल दूर है, कोई ऐसा शॉर्टकट बताइये, जो कल से प्रारम्भ कर सकूँ।" स्वामीजी एकदम बोल उठे- "किसी को बुरा मत समझो। किसी का बुरा मत चाहो समझ में आया?" मैंने कहा हाँ महाराज! वे आगे बोले - "किसी के साथ कभी कोई बुराई मत करो। ये बातें नोट कर लो और कल से शुरू नहीं करना है, अभी से करना है।"

आज यह संस्मरण लिखते समय मन भारी हो गया है। महाराजजी तो क्या थे, क्या बताऊँ? बल्कि अब तो मैं कहता हूँ कि वे क्या नहीं थे?

- हरिशरणागत

❖❖❖

फुटबाल

(6)

किसी ग्रामीण ब्रजवासी ने महाराजजी से पूछा, ''बाबा! लाला-लाली के प्रति आपका क्या भाव है?'' स्वामीजी महाराज ने उत्तर दिया, ''भैया, मैं तो प्रिया, प्रियतम की फुटबॉल हूँ। वे जिधर ठोकर दें, उधर चला जाता हूँ। इसमें बड़ा रस है। दोनों की दृष्टि मुझ पर लगी रहती है। मैं दोनों के चरण स्पर्श के आनन्द में आनन्दित रहता हूँ। मेरा अपने में अपना कुछ नहीं है। अनुपम खिलाड़ी का खिलौना हूँ। दोनों मुझे प्यार करते हैं।''

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

उनकी प्रसन्नता के लिए

(7)

स्वामी जी महाराज जब वृंदावन में होते तो प्रतिदिन श्री बांकेबिहारी के दर्शन करने अवश्य जाते थे। एक दिन एक मित्र ने पूछ लिया, 'महाराजजी! आपको दिखाई तो देता नहीं है - दर्शन कर नहीं सकते, फिर आप मंदिर क्यों जाते हैं।' श्री महाराजजी ने उत्तर दिया, 'भले आदमी! सोचो तो सही - मेरी आंखें नहीं हैं तो क्या ठाकुरजी की भी आंखें नहीं हैं? मैं नहीं देख सकता, परन्तु वो तो मुझे देख लेते हैं। मुझे देखकर उन्हें प्रसन्नता होती है। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं मंदिर जाता हूँ।"

कितना सजीव ईश्वर विश्वास है।

- हरिशरणागत

❖❖❖

ठोकर तगड़ी नहीं लगी

(8)

नये-नये साधु बने एक युवा सन्यासी स्वामीजी से बातें कर रहे थे। अपने परिचय के रूप में उन्होंने स्वामीजी महाराज से कहा, 'महाराज! मैं दस लाख पर ठोकर मारकर आया हूं।'

स्वामीजी तपाक से बोले, 'यार! ठोकर तगड़ी नहीं लगी नहीं तो दस लाख की याद नहीं आती।'

युवा सन्यासी निरुत्तर हो गए।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

दो तो यहीं मौजूद हैं

(9)

भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद थे - तब की बात है। स्वामीजी के साथ बातें हो रही थीं। प्रसंगवश स्वामीजी ने फरमाया कि, 'बाबूजी! देश का नेतावर्ग जब मिनिस्टर बन जाय तब देश का नेतृत्व कौन करेगा?'

राजेन्द्र बाबू ने कहा, 'महाराज! आप जिस स्तर की चर्चा करते हैं, उस स्तर की भावना और चरित्र वाले व्यक्ति देश में कहां मिलेंगे?'

स्वामीजी ने तत्काल कहा, कि 'दो तो यहीं मौजूद हैं।'

उत्तर सुनकर राजेन्द्र बाबू निरुत्तर हो गए और वातावरण में हंसी की लहर फैल गई।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

गलत प्रश्न

(10)

स्वामीजी महाराज से पहला पाठ मिला था, "सुख उसका दास है, जो सुख का दास नहीं है।" भरतपुर से दो-तीन जने हम लोग वृन्दावन गये थे। स्वामीजी ने पूछा - बोलो .... भाई, क्या सुनना चाहते हो? मैंने वैसे ही बोल दिया - महाराज! सुख-शान्ति चाहिए। कहने लगे। "तुम्हारा प्रश्न ही गलत है। जो सुख चाहता है, उसे शान्ति कभी नहीं मिलती।" सब चुप हो गये, क्या जवाब देते। स्वामीजी कब छोड़ने वाले थे, कहा - "अच्छा ये बताओ, सुख चाहते हो या सुख की गुलामी?" हम सब चुप। तो कंधे पर हाथ रखा और बोले, भैया, "सुख उसका दास है, जो सुख का दास नहीं है।"

- हरिशरणागत

❖❖❖

भगवान् ऐसे नहीं मिलेंगे

(11)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज नित्य टब-बाथ लिया करते थे। घटना वृंदावन आश्रम की है। एक माताजी ने आश्रम में उनके स्नान करने के पश्चात् बचे टब के पानी में से एक चुल्लू पानी लेकर अपने मुंह में डाल लिया। किसी ने उन्हें यह करते देख लिया तो इसकी चर्चा उन्होंने स्वामीजी महाराज से की। स्वामीजी ने उन माताजी को बुलाकर पूछा तो उन्होंने इसकी पुष्टि की। स्वामीजी महाराज ने, डाँटते हुए कहा - 'माताजी! भला किसी के शरीर का गन्दा पानी अपने शरीर में ड़ालने से भगवान् मिलेंगे? यह आपने ठीक नहीं किया।'

यह कहकर स्वामीजी मौन हो गए।

- शांतिस्वरूप गुप्ता

❖❖❖

गुरु तत्व तो एक ही होता है

(12)

राजस्थान पब्लिक कमीशन के तत्कालीन चेयरमैन श्री मदनमोहनजी वर्मा स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के दर्शन के प्रति शत-प्रतिशत आस्थावान् थे। उनके जीवन के मध्य काल की बात है।

एक मर्तबा अपने जीवन संबंधी उलझनों को दूर करने वे महर्षि रमण के पास अरुणाचल गये। उनसे पूछने के लिए उनके मन में कुछ प्रश्न थे। जब वे महर्षि के समक्ष जाकर उनके सामने बैठे तो उन्हें लगा कि उनके ऊपर महर्षि के दृष्टिपात मात्र से उनके प्रश्न एक-एक करके स्वतः ही सुलझ गये। उन्हें पूछना नहीं पड़ा। उनका मन पूरी तरह हलका हो गया और उन्होंने मन से महर्षि को गुरु स्वीकार कर लिया। वहाँ से आने के पश्चात् अपनी नित्य-पूजा में उन्होंने महर्षि का चित्र पधरा लिया।

कुछ वर्षों पश्चात् वे स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सम्पर्क में आये। उस समय भी उनके मन में कुछ प्रश्न थे जिनका समाधन न मिलने से वे व्याकुल थे। उन्होंने वे प्रश्न स्वामीजी महाराज के सामने रखे तो उन्हें पूरी तरह से समाधानकारक उत्तर मिल गये। अतः स्वामीजी को भी उन्होंने मन से गुरु स्वीकार कर उनका चित्र भी पूजागृह में रख लिया। उनके किसी एक मित्र को जब इस बात की जानकारी मिली तो उन्होंने वर्मा साहब से कहा, 'वर्मा साहब! गुरु तो एक ही होता है, आपने दो गुरु क्यों बना रखे हैं।'

वर्मा साहब इसका उत्तर नहीं दे पाए।

संयोगवश इस घटना की चर्चा स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के समक्ष हुई तो उन्होंने फरमाया, **'पूजा १० चित्रों की करो कोई फर्क नहीं पड़ता। गुरु तत्व तो एक ही होता है।'**

- शांतिस्वरूप गुप्ता

❖❖❖

तेरी आँखें किस काम आयेंगी?

(13)

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज शारीरिक रूप से दृष्टिविहीन थे। श्री हरिहरनाथजी महाराज (जिन्हें नाथजी महाराज के नाम से पुकारा जाता था) का आश्रम मझेवला (कड़ैल जिला अजमेर) में था। दोनों संत जीवन में लगभग ३० वर्षों तक साथ रहे। उनके अनुसार स्वामीजी महाराज १०-११ वर्ष की उम्र में दृष्टि खो बैठे थे। यह उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि स्वामीजी ने अपने सांसारिक जीवन के बारे में कभी किसी से चर्चा नहीं की।

स्वामीजी से कोई भक्त पूछ बैठा, 'महाराज आपके दृष्टि तो है नहीं आपका काम कैसे चलता है?'

स्वामीजी ने तपाक से उत्तर दिया, 'भले आदमी! तेरी आँखें किस काम आयेंगी?'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

श्रुति का ज्ञान, पाठशाला एवं पाठ

(14)

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज जिज्ञासु तो थे ही। एक बार उनमें शास्त्रों के अध्ययन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। अपनी इस इच्छा की चर्चा उन्होंने अपने गुरु से की।

गुरुजी ने फरमाया, 'बेटा! ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। जिसकी पाठशाला है एकांत तथा पाठ है मौन।'

गुरु कितने सही थे? शरणानन्दजी का सारा साहित्य बिना किसी शास्त्रीय उद्धरण के है तथा कर्मकांड से रहित है। फिर भी किसी शास्त्र से कम नहीं है। जीवन जीने की कला का सार है, मानवता का प्रतीक है।

- शांतिस्वरूप गुप्ता

❖❖❖

फक्कड़ जो थे

(15)

कुछ साधक वृंदावन आए। मानव सेवा संघ के आश्रम में ठहरे। ठहरने-खाने आदि की सुंदर व्यवस्था थी। भक्तजन जाने लगे तब स्वामीजी के प्रति बोले कि महाराज आपकी कृपा से हमारी व्यवस्था बहुत उत्तम हुई।

भक्तों को यह आभास नहीं था कि वे एक अनौपचारिक और फक्कड़ संत से चर्चा कर रहे थे। स्वामीजी बोल पड़े, 'अरे यार! कम से कम मेरे मुंह पर तो गाली मत दे।'

इसी प्रकार स्वामीजी साधकों के निमंत्रण पर भरतपुर आए। सत्संग समाप्त होने पर स्वामीजी के परम भक्त दुर्गाप्रसाद खादीवाला व ब्रिगेडियर घासीरामजी व अन्य भक्तों ने उनके प्रति आभार व्यक्त किया व धन्यवाद दिया।

स्वामी तपाक से बोले, 'धन्यवाद किसको? मुझे या आपको'।

फक्कड़ जो थे।

हरिशरणागत

❖❖❖

वो बड़ा बेवकूफ है

(16)

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के कई भक्त थे। उनके मनों में स्वामीजी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। एक भक्त ने अपने भाव को व्यक्त करते हुए उनकी बड़ी प्रशंसा की। स्वामीजी तो अपने आप को अकिंचन मानते थे। वे तो अहं-शून्य थे। जब स्वामीजी को भक्त द्वारा उनकी प्रशंसा के बारे में बताया गया तो वे बोल उठे, 'वो बड़ा बेवकूफ है।'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

जानी हुई बुराईयों का त्याग करो

(17)

एक बार भाई श्री दुर्गाप्रसादजी ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज हमें ऐसा शार्टकट बताइये कि हमारा शीघ्र कल्याण हो।

स्वामीजी बोले, 'अपनी जानी हुई बुराइयों का त्याग करो। शीघ्र कल्याण हो जाएगा।'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

सातवाँ दर्शन

(18)

दशकों बाद एक अन्य पहुँचे हुए संत स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज ने स्वतंत्र रूप से इस बात की पुष्टि कर दी कि शरणानंद जी का दर्शन सातवां दर्शन है। उन्होंने ऋषिकेश में कुछ भक्तों को संबोधित करते हुए फरमाया कि 'भारत षट्दर्शन (छः दर्शन) के लिए प्रसिद्ध है जिनमें देवी-देवताओं के प्रसंग व स्तुतियाँ हैं। परन्तु शरणानंदजी महाराज का दर्शन सातवां दर्शन है जिसमें मानव की स्तुति की गई है। मानव जीवन की महिमा का वर्णन जितना व जिस प्रकार उनके दर्शन व साहित्य में किया गया है, वह अन्य किसी दर्शन व साहित्य में नहीं है।'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

मुझे सुनने नहीं, आपको देखने आते हैं

(19)

एक बार स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज अजमेर पधारे। श्री टीकमचन्दजैन हाईस्कूल में उनका कार्यक्रम था। भक्तों ने राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया को भी स्वामीजी के कार्यक्रम का निमंत्रण दिया था, अतः वे भी उपस्थित थे। समारोह में भीड़ थी। सुखाड़ियाजी बोले, 'राज्य में हजारों विद्यालय, चिकित्सालय सरकार ने खोले हैं। इस तरह सरकार भी मानव सेवा संस्था का कार्य ही कर रही है।'

स्वामीजी का प्रत्युत्तर था, 'विद्यालय खोले, चिकित्सालय खोले, बहुत अच्छी बात है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है मानव में मानवता भरना।' स्वामीजी प्रज्ञाचक्षु थे अतः अपने पासवालों से पूछा, 'कितने लोग हैं?' बोले - बहुत अधिक। स्वामीजी बोले, 'अधिकांश लोग यहाँ मुझे सुनने नहीं आपको देखने आते हैं।' स्पष्टवादी जो थे।

- कन्हैयालाल लोढ़ा

❖❖❖

गोपी-प्रेम

(20)

एक बार स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज ने साधकों से पूछा, 'बोलो क्या सुनना चाहते हो?'

एक साधक ने निवेदन किया कि महाराज गोपी-प्रेम पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

स्वामी जी ने एक कथा से आरम्भ किया - एक मर्तबा नारदजी श्रीकृष्ण से मिलने द्वारिका गये। उनको जानकारी मिली कि आज तो कृष्ण बड़े आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। उन्होंने पूछा- 'क्या द्वारिका में कोई वैद्य नहीं है जो आपकी पीड़ा का इलाज कर सके।' कृष्ण ने कहा - भैया! मेरी इस पीड़ा का उपचार किसी वैद्य के पास नहीं है। मेरे किसी प्रेमी की चरणरज सिर पर लगे तो पीड़ा दूर हो। नारदजी ने रुक्मणीजी से कहा, 'भला इनका आपसे अधिक प्रेमी कौन होगा? आपकी चरणरज से इनका सिरदर्द तत्काल दूर हो जाएगा।' रुक्मणीजी अपनी चरणरज देने के लिए सहमत नहीं हुईं। बोली - 'ये तो मेरे स्वामी हैं। मेरी चरणरज इनके सिर पर लगेगी तो मुझे पाप लगेगा। मुझे नर्क में जाना पड़ेगा।' नारदजी चक्कर में पड़ गये। उन्हें गोपियों के पास जाकर निवेदन करने का सूझा। वे तत्काल वृंदावन गये। गोपियों ने समाचार पूछा तो बोले - मैं द्वारिका से आ रहा हूँ। श्रीकृष्ण के सिर में भयंकर पीड़ा है, जिसके कारण वे आकुल व व्याकुल हो रहे हैं। गोपियाँ अधीर होकर बोलीं, 'अरे बाबा! क्या सिर दर्द का कोई इलाज नहीं है?' नारद बोले, 'इलाज तो है। कोई प्रेमी अपने चरणों की रज उनके सिर पर लगाने को दे दे तो उनका इलाज हो सकता है।' गोपियाँ बोलीं, 'अरे बाबा! हमारे लाला का सिरदर्द हम नहीं सह सकतीं। जितनी चाहो चरणरज ले जाओ पर लाला की पीड़ा दूर करो। हम नर्क में भले ही चली जाएं पर उनका सिरदर्द नहीं सहा जाता।'

यह है गोपी प्रेम का एक उदाहरण। शरणानंदजी महाराज बोले - प्रीति के लिए प्रीति और त्याग दोनों आवश्यक हैं। जहाँ प्रीति है वहाँ त्याग की कोई सीमा नहीं होती।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

भव रोग का उपचार

(21)

ईश्वर की अहैतुकी कृपा से मानव-जीवन मिलता है। उसीकी कृपा से सत्संग का मौका मिलता है - यह तो सुना था पर नहीं मालूम था कि अहैतुकी कृपा से "संत" मिलते हैं। पूज्य स्वामीजी ने मेरे बिना चाहे जबर्दस्त कृपा की। यह १९६४ की घटना है। स्वामीजी भरतपुर सिमको वैगन फैक्ट्री के जनरल मैनेजर श्री के.एन. पाठक की कोठी पर ठहरे थे। शहर से हम चार-पाँच जने रोज दर्शन को जाते। हमारी मंडली के मुखिया श्री भगतजी (शान्तिस्वरूप गुम्बर) स्वामीजी से बातचीज में हमेशा मुझे आगे कर देते थे। उस दिन मेरे सिर में पीड़ा थी, चुपचाप बैठा था। स्वामीजी ने पूछा .... भाई नहीं आये क्या? भगतजी के बताने पर कि सिर में दर्द है, मुझे जबर्दस्ती अपने पास खींच लिया। गाय का घी, कपूर, चंदन और जाने क्या-क्या शीशी में से लेकर मलने लगे। मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। जब मैं कहूँ, महाराज! अब दर्द नहीं है, तो उनकी पकड़ और भी मजबूत हो जाती।

मैं क्या करूँ? १०-१५ मिनट बाद मुझे तरकीब सूझी- मैं बोला, महाराज! सिर का दर्द तो चला गया, अब आपके हाथों की रगड़ से तकलीफ हो रही है। बात बन गई और मैं शिकंजे में से छूट गया - ऐसा लगा। इस घटना को उस समय मैं केवल एक संयोग मानता था। **अब आज महसूस हो रहा है कि वह केवल सिर की पीड़ा का उपचार नहीं, भवरोग का उपचार संत ने किया था।** ऐसा लगता है कि आज भी उनका हाथ मेरे सिर पर है।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

आवश्यकता से पूर्व आवश्यक वस्तु मिल जाएगी

(22)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने एक बार फरमाया था कि अगर तुम -

-वस्तु को अपना नहीं मानोगे,

-वस्तु का संग्रह नहीं करोगे तथा

-वस्तु का दुरुपयोग नहीं करोगे

तो आवश्यक वस्तु आपकी आवश्यकता से पूर्व आपको मिल जाएगी।

थोड़ा ठहर कर पुनः कहा कि "उपरोक्त बात मैं केवल आस्था के आधार पर नहीं कह रहा हूं, अनुभव सिद्ध आधार पर कह रहा हूं।"

- हरिशरणागत

❖❖❖

धिक्कार है मुझे - कि
(23)

'धिक्कार है मुझे – कि मैं अपनी कामनाओं का त्याग न करूं, उनके प्रेम के लिए।'

एक बार ऐसी चर्चा करते हुए महाराज जी (स्वामी श्री शरणानंद जी) की वाणी से एक वाक्य निकला। कहने लगे कि – 'देखो तो, उनका प्रेमी स्वभाव तो देखो? मानव हृदय के प्रेम का आदर करने के लिए वह अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, ब्रह्मभाव का त्याग करके, जीवभाव स्वीकार करके तुम्हारे पास आता है और उनको प्रेम प्रदान करने के लिए तुम अपनी तुच्छ कामनाओं का त्याग नहीं कर सकते? और अगर करते हो तो सोचो, उनकी तुलना में ज्यादा किया कि कम किया? ब्रह्म, ब्रह्मभाव छोड़ करके, जीवभाव स्वीकार करके तुम्हारे आगे आ सकते हैं, मनुहार कर सकते हैं।'

गोपियाँ जा रही हैं दही बेचने। श्यामसुन्दर रास्ता रोककर खड़े हो जाते हैं, दही दे दो। तो कहती हैं – ऐसे कैसे देदें, लाला नाचो। नाचकर दिखाओ तब देंगी। वंशी बजाकर सुनाओ तो देंगी। तो वह नाच सकता है, बंशी बजा सकता है। तो खेल-खेलकर, नाच-नाच कर थकित होकर ग्वाल-बाल बैठ जाते हैं तो उनके चरण सहला सकता है। कहता है- दादा मेरा, थक गया तो मैं तेरी चरण सेवा करूं। तो ब्रह्मभाव को त्याग करके हमारे लिए यह सब कर सकता है। तो मैं अपने को सोचने लगी कि 'धिक्कार है मुझे – कि मैं अपनी कामनाओं का त्याग न करूं उनके प्रेम के लिए।'

देवकी माताजी

❖❖❖

देख लिया तुमने संसार का स्वरूप

(24)

वर्ष १९७३ में जब मैं एम.ए. पूर्वार्द्ध की परीक्षा दे चुकी, अवकाश के समय वृन्दावन आश्रम आई। यहां परीक्षा परिणाम की प्रतीक्षा में थी। ५ अगस्त १९७३ को प्रभातकालीन वेला में भरतपुर से कुछ भाई एक दुःखद समाचार लेकर पूज्य पिताजी (स्वामीजी महाराज) के पास आए कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता, जिनकी आयु २६ वर्ष की थी का भरतपुर में आकस्मिक निधन हो गया। यह सुनकर पिताजी ने मुझे बुलवाया ओर अपने निकट बैठाकर रुंधे हुए कंठ से बोले, 'बेटा! तुम्हारे भाई ने इस असार संसार से सदा के लिए विदा लेली है।' सुनकर मैं तो अवाक् हो गई। यह सब कैसे हो गया। मुझे घटना की पूरी जानकारी दी गई। पर मैं तो किंकर्तव्य विमूढ़ थी।

भाई के मृतक शरीर को भरतपुर से वृंदावन लाया गया तो उसे आश्रम के गेट पर रखा गया। पूज्य पिताजी शव के पास आए और सिर पर हाथ रखकर कल्याण कामना की। मुझे भीतर से लगा कि संत की करुणा ने अकाल मृत्यु के ग्रास बने प्राणी का सदा-सदा के लिए उद्धार कर दिया। दाह संस्कार के पश्चात् मुझे बोले, 'बेटा! अब तुम्हें अनुभव हो रहा होगा कि सिवाय प्रभु के कोई भी संसार में अपना करके नहीं है। **देख लिया तुमने संसार का स्वरूप**। फिर भी तुम संसार में फंसना चाहोगी?'

मैंने कहा, 'बिल्कुल नहीं पिताजी।'

तब बोले, 'करो प्रतिज्ञा कि मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी रहूंगी और मानव सेवा संघ की सेवा करूंगी।'

ऐसा कहकर प्रतिज्ञा को मुझसे दोहरवाया। मैं मंत्रवत् सब कहती गई। गर्म लोहे पर की गई चोट उसके आकार को बदल देती है। ऐसे ही करुणामय संत ने इस जीवन की दिशा बदल दी।'

मैं कृतार्थ हो गई।

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा

(25)

यह बात ईसा जयंति २५ दिसम्बर १९६७ के दिन की है। स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज वार्षिक सत्संग समारोह के निमित्त जयपुर पधारे हुए थे। रामनिवास बाग म्यूजियम व छोटी चौपड़ सीताराम जी के मंदिर में दोनों समय उनके प्रवचन होते थे। ठहरे हुए थे- पब्लिक सर्विस कमीशन के तत्कालीन चेयरमैन श्री एम.एम.वर्मा साहब के निवास स्थान, ६ मोती डूंगरी रोड़ पर। ब्रह्म-मुहूर्त का सत्संग ४ से ५ वर्मा साहब के निवास पर ही होता था।

उस दिन भोर के सत्संग में सुप्रसिद्ध गोसेवी श्री राधाकृष्ण बजाज व बाबा बलवंतसिंहजी के साथ मैं भी उपस्थित था। स्वामीजी महाराज का प्रवचन पूरा होने के पश्चात् राधाकृष्णजी बजाज ने स्वामी जी से कहा, - 'महाराज! आज आपके भतीजे* का जन्मदिन है। उनके विषय में आपसे कुछ जानकारी करना चाहते हैं।'

स्वामीजी महाराज - 'हाँ! हाँ! बजाज साहब! पूछो, क्या पूछना चाहते हो।'

बजाज जी - 'महाराज! ईसाई लोग कहते हैं कि मुक्ति (उद्धार) चाहने वालों को ईसा मसीह को मानना व उनमें विश्वास करना आवश्यक है। तो क्या अन्य मान्यता वालों के लिए मुक्ति का मार्ग बंद है।'

इस प्रश्न को सुनकर स्वामीजी महाराज थोड़ी देर के लिए सुट्ट हो गए। फिर भरे हुए गले से बोले - 'भैया! मैं ईसा को अच्छी तरह जानता हूं। मेरी जानकारी में ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा। हां! उनके नाम पर दुकानें चलाने वाले लोग भले ही यह प्रचार करते हों। पर ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा।'

यह बोलकर स्वामीजी मौन हो गए जैसे किसी गहरे में उतर गए हों। **हम सबको ईसा पर उनकी यह बात पूरी तरह से समाधानकारक व विवेकसम्मत लगी।**

❖❖❖ - शांतिस्वरूप गुप्ता

---

* कृपया देखें पृष्ठ संख्या 1

हमारा मौलिक प्रश्न

(26)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के अनुसार आज का मौलिक प्रश्न हमारे सामने भोग की रुचि का नाश तथा सरस जीवन की प्राप्ति का है। इस मौलिक प्रश्न को हल करने के लिए ही हमें मिले हुए शरीर के द्वारा, परिवार की, समाज की तथा संसार की सेवा करनी है।

भोग नहीं करना है, सेवा करनी है। सेवा क्या है? भोग में अपना सुख निहित होता है, सेवा में परहित निहित होता है, तो हम अपने सुख के लिए मिली हुई वस्तु यानी शरीर, योग्यता, परिस्थिति, सामर्थ्य आदि का उपयोग न करें अपितु परहित में इनका सदुपयोग प्राप्त विवेक के प्रकाश में करें। इससे शरीर और संसार का परस्पर निर्वाह सिद्ध हो जाएगा। इससे भोग की रुचि का नाश होकर जीवन सरस हो जाएगा। अपने में ही प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति हो जाएगी तथा जीवन का मौलिक प्रश्न सदा-सदा के लिए हल हो जाएगा।

- हरिशरणागत

❖❖❖

सच्चा दोस्त

(27)

एक सज्जन अपने मित्र के साथ स्वामीजी महाराज के पास आए थे। बातों के बीच वह कहते, 'महाराज ये मेरे घनिष्ठ मित्र हैं।'

स्वामीजी ने एक बार सुना, दो बार सुना। जब पुनः यही बात सुनी तो स्वामीजी से रहा न गया। तुरंत कह उठे, 'यार! सच्चा दोस्त तो वह है जो खुदा से मिला दे।'

- हरिशरणागत

❖❖❖

सत्य का अधिकारी

(28)

एक बार स्वामीजी से किसी ने प्रश्न किया- 'महाराज! सत्य का अधिकारी कौन है?'

उत्तर मिला-

'जिसको प्रसन्नता देने के लिए संसार असमर्थ है अर्थात् जिसे भोग में रोग, हर्ष में शोक, संयोग में वियोग तथा जीवन में मृत्यु का अनुभव होता है, वही सत्य का अधिकारी है।'

सत्य का मार्ग इतना संकीर्ण है कि सत्य का अभिलाषी, स्वयं अकेला ही जा सकता है।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

भगवान् के यहाँ स्थान

(29)

लगभग वर्ष १६७०-७१ की बात है। सिमको वैगन फैक्ट्री, भरतपुर के तत्कालीन महाप्रबन्धक श्री एस. के. सक्सेना ने मुझे बताया कि 'स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के साथ मेरा परिचय ट्रेन में हुआ था। मेरा विनोदी स्वभाव था। समय काटने के लिए मैंने स्वामीजी से पूछा, 'स्वामीजी महाराज! हमारे जैसे आदमी के लिए भी भगवान के यहां कोई स्थान है या नहीं? मेरा जीवन बहुत ही व्यस्त और भोग-प्रधान है। रात-दिन बड़े लोगों के बीच, तामसी खानपान, रात्रि देर तक जागना आदि में बीतता है। शराब-पार्टी तो मामूली बात है।'

'स्वामीजी ने मेरी बात बड़े ध्यान से सुनी और बोले'-

'तुम्हारी पत्नि है? पुत्र है? उनसे प्यार करते हो?'

'हां, बहुत प्यार करता हूं।'

'अच्छा! अब आगे उनसे दो-गुना प्यार करो — तुम्हें भगवान का प्यार मिल जाएगा।'

'महाराज! दो गुना क्या मैं दस गुना प्यार दे सकता हूँ।'

स्वामीजी महाराज ने फरमाया, 'तुम प्यार का मतलब भी समझते हो? कहीं मोह, ममता, आसक्ति तो नहीं करते।'

मैं सोचने लगा मामला टेढ़ा है। इतने में स्वामीजी ने पुनः पूछा, 'यह बताओ तुम पत्नि को कितना प्रेम करते हो?'

'जान दे सकता हूं- उसके लिए सब कुछ कर सकता हूं।' मैंने कहा।

स्वामी जी का प्रश्न था, 'वह तुमसे प्यार न करे, किसी अन्य से करे, क्या तब भी जान दे सकते हो?'

ऐसे प्रश्न की कल्पना मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकता था। मैंने भावावेश में कहा, 'तत्काल उसे उसी समय शूट कर दूंगा, एक मिनट भी देर नहीं करूंगा।'

स्वामी जी महाराज ने सहजता से फरमाया, 'भैय्या! इसे प्रेम नहीं कहते। यह तो आसक्ति है। वह तुम्हें प्रेम दे तब तुम भी प्रेम दो - यह तो प्रेम की परिभाषा ही नहीं है। बुरे से बुरे व्यक्ति को भी तुम प्रेम कर सको, उसकी सेवा कर सको तो तुमको भगवान के यहां स्थान मिल सकता है।'

मैंने स्वामीजी महाराज के चरण पकड़ लिए।

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

लोग कितनी भावना से वस्तु लाते हैं
(30)

एक बार ग्रीष्म ऋतु की बात है। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ट्रेन में सफर कर रहे थे। लोग जगह-जगह स्टेशन पर दूध, फल, मिठाई, सब्जी, पूड़ी आदि खाने का सामान श्री महाराजजी को अर्पित कर जाते। भिक्षा की वस्तु का सदुपयोग करना, कोई भी वस्तु खराब न होने देना, इस बात का बहुत ध्यान रखते थे। साथ वालों को भी यही सिखाते।

उसी सफर में साथ वालों की भूल के कारण दूध आइस-बाक्स में नहीं रखा गया तो वह गर्मी से फट गया। श्री महाराज को इस बात का पता चला तो सभी साथ वालों को इस असावधानी के कारण डांटा और आग्रहपूर्वक मांगकर वह दूध स्वयं पी गये। बहुत प्रार्थना की कि कृपया ऐसा न करें, फटा दूध पीने से तबियत खराब हो जाएगी, पर किसी की नहीं सुनी। पीने के बाद बोले, 'भविष्य में तुम लोग ऐसी असावधानी नहीं करोगे, इसीलिए मैंने यह दूध पिया। **भिक्षा की वस्तु का आदर किया करो, लोग कितनी भावना से वस्तु लाते हैं!'**

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

स्वामीजी की जीवनी

(31)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज सशरीर जब मौजूद थे - उनके अनेक मित्रों ने उनकी जीवनी लिखने का अनेक बार प्रयत्न किया। परंतु महाराजजी ने इतिवृत्तात्मक कथा प्रकाशित करना पसंद नहीं किया। जब उनसे पूछा गया कि, 'महाराज! आपकी जीवनी क्या है?' तो एक वाक्य में उत्तर देते, 'मेरी जीवनी है दुःख का प्रभाव - पढ़लो।' यदि कोई परिचय पूछता तो कह देते, 'लिखलो, मैं सदैव अमरत्व में रहता हूं, यह शरीर सदैव मृत्यु में रहता है।' यह पूछने पर कि महाराज जी आपकी उम्र क्या है? तो कहते, 'आदि सृष्टि उपजी थी तबसे मैं हूं भैय्या! वर्ष तुम गिन लेना।'

इस प्रकार अहंशून्य विचारों एवं कथन के कारण उनकी जीवनी सांगोपांग नहीं लिखी गई। इतना ही कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व में कर्म-ज्ञान-भक्ति का अद्भुत-अनोखा संगम था। वे देशकाल की सीमा से परे उस महान् चेतना से अभिन्न होकर हमें भी निरंतर अभिन्न होने का संदेश दे रहे हैं - ऐसा लगता है।

- कुमारी गंगा डागा

❖❖❖

तुम्हारी नीयत क्या है?

(32)

बीकानेर के भीनासर गांव में मेरे मामाजी ने स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सान्निध्य में सत्संग का आयोजन किया था। इस अवसर पर महाराजजी का आगमन उनके घर पर भी हुआ। मामाजी कि आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वे देशी घी का व्यापार करते थे। उन्हें बहुत घाटा हो गया अतः कर्जा हो गया। वे दुःखी थे। उन्होंने महाराजजी से कहा कि, 'महाराज! मैं बड़ी ईमानदारी से शुद्ध, देशी घी का व्यापार करता हूं परंतु घाटे के कारण मेरे ऊपर अत्यधिक कर्ज हो गया। यदि मैं उस कर्ज को न चुका सका, और बीच ही में प्राणान्त हो गया तो कर्ज लेकर मरूंगा। मेरा कल्याण कैसे होगा?'

एक बार तो स्वामीजी चुप हो गए। फिर बोले, 'तुम्हारी नीयत क्या है? कर्जा चुकाने की है या नहीं।' मामाजी ने कहा, 'नीयत तो मेरी पाई-पाई चुकाने की है।' महाराज ने फरमाया, 'यदि तुम्हारी नीयत साफ है तो कर्जा अवश्य चुकेगा और यदि बिना चुकाए मर गये तो तुम्हें दोष नहीं लगेगा, क्योंकि नीयत तुम्हारी देने की है।' ऐसा समाधान सुनकर मामाजी को राहत मिली। संत-कृपा से उनके जीवन काल में ही उनका पाई-पाई कर्ज उतर गया।

- कुमारी गंगा डागा

❖❖❖

ईमानदार बने रहो, बस! काम बन जाएगा
(33)

रांची प्रवास में एक सुबह देखा कि एक व्यक्ति बंगले के आंगन में खाट पर पौढ़े हैं। गेरुआ स्वल्प-वस्त्र, यूनानी डील डौल, बड़ा माथा, बिखरे केश, अधपकी दाढ़ी, सुकरात-सी आकृति, पर लावण्यशेष चेहरा, प्रज्ञाचक्षु परंतु राजीवलोचन। मैं समझ गया कि ये भारतीय-स्वाधीनता आन्दोलन में कभी सुर्खियों में आने वाले स्वामी शरणानंदजी हैं जिनके बारे में सुन-सुनकर मैं सोचा करता था कि प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में जिस सूरदास को परिकल्पित किया है उसमें ये ही तो प्रकाशित नहीं हो गए हैं। अस्तु।

विज्ञान का एक छात्र स्वामीजी से उलझा था। शायद भगवान पर बात चली थी।

स्वामीजी- 'जब तुम काम कर रहे होते हो, तब तुम्हारा मन कहां रहता है?'

छात्र - 'काम में।'

स्वामीजी - 'और जब काम में नहीं लगे होते हो तब?' छात्र चुप। वातावरण निःशब्द। अचानक स्वामीजी जोर से हंसे और हंसते हुए बोले- 'लो, हम बता देते हैं, 'भगवान् में' तत्काल छात्र में भी प्रतिक्रिया हुई - 'मैं भगवान में विश्वास नहीं करता। वह नहीं है?'

स्वामीजी फिर जोर से हंसे, उठ बैठे और हंसते हुए ही बोले - 'हाँ, वह नहीं भी हैं। भला, 'नहीं' में उनके सिवाय और कौन हो सकता है?' विज्ञान छात्र के काम नहीं आ रहा था। वह मर्माहत हो गया किंतु तब तक

स्वामीजी उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर झकझोरते हुए और उन पर कुछ रखते हुए कह रहे थे –

'भैया! तुम ईमानदार हो। ईमानदार बने रहो, बस! काम बन जाएगा, तुम्हारा भी और समाज का भी। भगवान् से मेरा तो व्यक्तिगत नाता है। लो, पूरी और अचार खाओ, एक भाई अभी दे गए हैं।'

छात्र ने पूरी – आचार हाथ में ले लिया और स्तब्ध होकर स्वामीजी की ओर निहारने लगा।

- प्रो. केसरी कुमार

❖❖❖

भक्त का मान न टलते देखा

(34)

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था। इसी दौरान स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज कई बार जेल गए। एक बार की बात है महाराजजी से जेलर ने आग्रह किया कि 'आपको गेरुए वस्त्र उतार कर जेल की सफेद वर्दी पहननी पड़ेगी। जेल के नियमानुसार आप यहां गेरुए वस्त्र नहीं पहन सकते।' इसके उत्तर में स्वामीजी ने जेलर साहब से फरमाया, 'आपके जेल के नियमानुसार मैं गेरुए वस्त्र नहीं पहन सकता तो ये वस्त्र उतारकर मैं आपको दिये देता हूं। लेकिन मैं भी सन्यास-धर्म के नियमानुसार जेल के सफेद वस्त्र नहीं पहन सकता।' यह कहकर श्री महाराजजी ने अपना कटिवस्त्र उतार कर जेलर को दे दिया।

जेलर वस्त्र लेकर चला गया। महाराजजी अवधूत की तरह बिना वस्त्र पहने ही अपनी मस्ती में मस्त रहे। उधर जेल में भोजन में खिचड़ी पकाई जा रही थी। भोजन पकानेवाला आदमी हैरान कि कितना ईंधन फूंक दिया, कितना पानी डाल दिया- किंतु खिचड़ी तो पके ही नहीं। लगभग साढ़े तीन सौ लोग थे जो भूखे बैठे थे भोजन की प्रतीक्षा में। अब क्या करें? तब जेल के एक कर्मचारी को ध्यान में आया कि भगवत्-भक्त, संत-महात्मा को कष्ट पहुंचा है, संभव है, इसी कारण खिचड़ी नहीं पक रही हो। उस कर्मचारी ने जेलर साहब को सलाह दी कि महात्माजी के वस्त्र लौटाकर कष्ट के लिए क्षमा मांगना ठीक रहेगा। जेलर को बात जंच गई। उन्होंने गेरुए वस्त्र लौटाते हुए क्षमा मांगी। स्वामीजी महाराज ने अपनी ओर से यह कहा कि ''भैय्या रसोई न पकने में मेरा कोई हाथ नहीं है। आपने जेल के नियम का पालन किया और मैंने सन्यास के नियम का। इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया है।'' जेलर सहित उनके निजी साथी आश्चर्य चकित हो गए यह जानकर कि महात्मा को गेरुए वस्त्र लौटाते ही खिचड़ी पक गई।

कहते हैं, 'भक्त का मान न टलते देखा।'

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

सो स्वाद तो कहीं नहीं था

(35)

महाराजजी (स्वामी श्री शरणानंदजी) कहते थे, 'भाई, रावण और कंस को मारने के लिये थोड़े ही उनको कुछ करना था। गोस्वामीजी ने लिखा है, "भृकुटि विलास सृष्टि लय होई"। जिसके संकल्प मात्र से सारी सृष्टि भस्म हो सकती है, उसको रावण और कंस को मारने के लिए अवतार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी? लेकिन क्यों आए। इसलिये, कि शबरी मैय्या के झूठे बेर कैसे खायेंगे। वहां तो भृकुटि विलास से काम नहीं चल सकता है। वह स्वाद तो शासक बनने से नहीं आ सकता है। विदुरानी (विदुर जी की स्त्री) के केले के छिलके में जो मजा आया, वहां गोलोक-साकेत में बैठे-बैठे मृत्यु का चक्र चलाकरके रावण, कंस को मारने में वह मजा कैसे आता?'

पुकारा दरवाजे पर। विदुरानी स्नान कर रही थीं। मीठी-मीठी कंठ ध्वनि और उसमें परम प्रेम का जादू। घबरा कर उठ आई निर्वस्त्र और दरवाजा खोल दिया। प्रेमियों को ध्यान कहां, शरीर का होश कहां? वे तो देह-धर्म से ऊपर होते हैं। विदुरानी ने झट से दरवाजा खोल दिया। अरे! यह तो कृष्ण की ध्वनि मालूम होती है। आओ, आओ, आओ! तो उन्होंने जल्दी से कंधे पर से अपना पीताम्बर उतारकर डाल दिया कि भाभीजी को तो होश ही नहीं है, पता ही नहीं है। तो डाल दिया पीताम्बर। उसके बाद आदर-सत्कार कर रही हैं। भगवान् कहें, भूख लगी है। किसको भूख लगी है? जो संकल्प मात्र से सारे विश्व का भरण-पोषण कर सकता है, उसको

भूख लगी है। जिसका नाम है विश्वम्भर, उसको भूख लगी है। किसलिये? विदुरानी का प्रेम-भाव ग्रहण करने के लिये।

तो जल्दी से पके हुए केले घर में से उठाकर ले आईं। खाद्य निकालकर फेंक रही हैं और छिलके खिलाती जा रही हैं। बड़ा मीठा लग रहा है, अत्यंत स्वादिष्ट लग रहा है। तो स्वामीजी महाराज कहते कि यह मजा लाला को कैसे आता? गोलोक और साकेत में बैठकर चक्र चलाकरके कंस और रावण को तो मार सकते थे। परंतु शबरी के झूठे बेर रह-रह कर उनको याद आते हैं। क्या कहते? मैय्या कौशल्या ने बड़े लाड़-प्यार से बड़े-बड़े पकवान बनाए, खिलाए। ससुराल में बड़ी पहुंनाई हुई। सासू सुनयनाजी ने क्या-क्या नहीं बनाया, खिलाया। कितना खिलाया, कितना स्वादिष्ट भोजन परोसा। **लेकिन शबरी मैय्या के झूठे बेरों में जो स्वाद आया सो स्वाद तो कहीं नहीं था।**

- **देवकी माताजी**

❖❖❖

अनंत के प्रतिरूप

(36)

मानव सेवा संघ, वृन्दावन आश्रम की स्थापना स्वामी जी के द्वारा ही हुई किन्तु वे स्वयं आश्रम की भूमि में नहीं रहेंगे एवं आश्रम का अन्न, जल, दूध आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे, यह उनका नियम था। भक्तजनों ने जब यह देखा कि अन्यत्र रहकर श्री महाराजजी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है तब संतकुटी का निर्माण विशेष तौर पर उनके लिये ही किया गया और उनसे प्रार्थना की गई कि वे अब इस कुटी में रहना स्वीकार करलें। करुणापूरित संत ने भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके वर्ष १९६९ के आसपास संतकुटी में निवास करना प्रारंभ किया। संत का संतकुटी में निवास होते ही आश्रम में नया उत्साह एवं आनंद व्याप्त हो गया। सबका आकर्षण केन्द्र संतकुटी बन गई।

पिताजी जब भी बाहर की यात्रा करके वृन्दावन आते, उनकी गाड़ी की आवाज सुनाई देती तो सभी आश्रमवासी संतकुटी की ओर दौड़ पड़ते। अब सोचती हूं तो स्पष्ट दिखता है कि उनमें थी अनंत की प्रियता, अनंत का माधुर्य, अनंत की उदारता, अनंत की करुणा - सबकुछ था उनमें। **सचमुच वे अनंत के प्रतिरूप थे।**

- कुमारी गंगा डागा

❖❖❖

कुआँ प्यासे के पास गया

(37)

एक बार की बात है जब मैं वृन्दावन आश्रम में रहकर बी.ए. का अध्ययन कर रही थी। दर्शन शास्त्र के मेरे एक प्रोफेसर साहब (नाम भूल गई) के जवान लड़के का असमय ही निधन हो गया। प्रोफेसर साहब इस दुःख से बहुत दुःखी थे। मैंने पूज्य पिताजी (स्वामीजी महाराज) को उनका सारा दुःख सुनाया। सुनकर तुरंत बोले - मुझे हाथ पकड़कर उनके घर ले चलो। इस तरह उनके घर जाकर उन्हें सान्त्वना दी, समझाया सत्संग कराया।

धीरे-धीरे प्रोफेसर साहब का सारा दुःख जाता रहा।

- **कु. गंगा डागा**

❖❖❖

मंत्र-दीक्षा तथा अभयदान

(38)

मैं कालेज-छात्रा थी तब मंत्र दीक्षा के लिए पू. पिताजी (स्वामी शरणानंदजी महाराज) से मैंने निवेदन किया। स्वामीजी महाराज ने फरमाया, 'मैं मंत्र-दीक्षा नहीं देता। मैं तो मानव बनने की दीक्षा देता हूं। और तत्काल मुझसे निम्न पांच वाक्य दोहरवाये। बोले-

१. मेरा कुछ नहीं है।

२. मुझे कुछ नहीं चाहिए।

३. प्रभु मेरे अपने हैं।

४. सब कुछ प्रभु का है।

५. उनका प्रेम ही मेरा जीवन है।

पांचों वाक्य दोहरवा कर बोले-

'जाओ हो गई दीक्षा।'

मुझे बड़ा ही बल मिला कि संत ने प्रभु की शरणागति दिलवाकर अभयदान दे दिया।

- कुमारी गंगा डागा

❖❖❖

गुलामों को ऐसी हंसी नहीं आया करती

(39)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज विचार विनिमय के दौरान कभी-कभी ऐसी खुली व उन्मुक्त हंसी हंसते थे कि उनकी दाढ़ी हिलोरें खाने लगतीं। दर्शक व श्रोता मुग्ध हो जाते थे। किसी कार्यक्रम में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया जी भी थे जिन्होंने स्वामीजी महाराज का वह मुक्त हास्य देखा।

कार्यक्रम समाप्ति के पश्चात् सुखाडियाजी ने स्वामीजी के साथ आए किन्हीं साथी से इस बात की चर्चा की और कहा - 'हमें कभी ऐसी उन्मुक्त हंसी नहीं आती।' उनके जाने के पश्चात् साथी ने इसकी जानकारी स्वामीजी को दी तो स्वामीजी के श्रीमुख से निकला, 'गुलामों को ऐसी हंसी नहीं आया करती।'

- कन्हैयालाल लोढ़ा

❖❖❖

दिव्य प्रेम का प्रक्षेपण

(40)

जयपुर रेलवे स्टेशन का एक अविस्मरणीय प्रसंग है। वर्ष १९६३ ई. की बात है - स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज देर रात्रि की ट्रेन से अहमदाबाद के लिए रवाना होने को थे। श्री नारायणदासजी राठी उनकी सेवा में थे - सामान व्यवस्थित जमा रहे थे। डिब्बे में दूसरी तरफ श्री लक्ष्मीलालजी जोशी, मदनमोहनजी वर्मा, जवानसिंहजी राणावत आदि प्रतिष्ठित सज्जन स्वामीजी महाराज से गप्पें कर रहे थे। मैं डिब्बे में गेट के पास दुबका उनकी बातें सुन रहा था। तब मैंने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी और शोध कार्य आरम्भ कर दिया था। कुछ दिनों से स्वामीजी महाराज के सम्पर्क में आया था तो मेरे युवा मन में हिलौरें उठ रही थीं कि सब कुछ छोड़कर उनके साथ हो लूं।

ट्रेन छूटने का समय होने को था। परन्तु इतने बड़े आदमियों के बीच स्वामीजी महाराज से कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था। उनसे बात नहीं कर पाने का दुःख अवश्य ही मेरे मन में था। इतनी ही देर में गार्ड महोदय ने सीटी दे दी। मैं क्या देखता हूँ - स्वामीजी महाराज डिब्बे के प्रवेश द्वार पर आकर खड़े हो गए और बोले, 'वो विद्यार्थी बालक कहाँ है, क्या कहना चाहता है?' मुझे अवसर मिला, मैंने तुरन्त उनके चरण स्पर्श किये व बोला, 'मैं सदैव आपके साथ हो लेना चाहता हूँ।' उत्तर मिला, 'बेटा! किसी महापुरुष के साथ रहने से कोई बड़ा नहीं होता। उसकी वाणी का अनुसरण करने पर ही महानता की प्राप्ति होती है।' एक क्षण रुककर फिर बोले, 'अच्छा! अचाह व स्वाधीन होकर प्रेमी हो जाओ, काम बन जाएगा' और ऐसा कहते-कहते मेरे सिर को दुलार से पकड़ कर एक प्यार भरा दिव्य चुम्बन दे दिया।'

इतनी ही देर में गार्ड़ ने दूसरी सीटी दे दी। सब लोग फटाफट डिब्बे से नीचे उतरे और गाड़ी चल दी। मैं अद्‌भुत रोमांच का अनुभव कर रहा था। लगता है जैसे इस देह में दिव्य प्रेम का प्रक्षेपण कर दिया गया था।

- शरणानुराग (डॉ. बसंत मिश्रा)

❖❖❖

भविष्य तुम्हारा उज्ज्वल हो जाएगा

(41)

यह बात वर्ष १९६६ के जनवरी-फरवरी माह की है। मैं उन दिनों जयपुर स्थित प्रेम निकेतन आश्रम में सपरिवार रहता था। श्री रामेश्वरजी अग्रवाल प्रबन्धक थे। मैं मंत्री था। मैंने दो पृष्ठों का एक टाइपशुदा विस्तृत पत्र स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के नाम वृंदावन आश्रम के पते पर भेजा, जिसमें मेरे व्यक्तिगत जीवन संबंधी समस्याओं का पूरा विवरण दिया गया था। पत्र पहुँचते ही वृंदावन से फोन आया कि स्वामीजी महाराज ने मुझे स्वयं को वहाँ बुलाया है। मैं तत्काल वहाँ चला गया।

सूचना मिलते ही स्वामीजी ने मुझे बुलाया और बड़ी आत्मीयता से बोले – 'तुम्हारा पत्र मुझे मिला है। तुम स्वयं ही उसे मुझे पढ़कर सुनाओ।' मैंने पत्र सुनाया तो स्वामीजी की प्रतिक्रिया थी – 'तुम्हारा पत्र सुनकर लगा कि तुम्हारे जीवन में अभाव है और प्रभाव भी है। बेटा! वर्तमान निर्दोष होता है। अब आगे से तुम वर्तमान की निर्दोषता को सुरक्षित रखो। की हुई भूलों को दोहराओ मत, तो भविष्य तुम्हारा उज्ज्वल हो जाएगा।'

स्वामीजी महाराज ने चारपाई पर लेटे-लेटे मेरा पत्र सुना था। वह फुर्ती से बैठे हो गए और हाथ पकड़ कर मुझे अपने पास खींच लिया तथा सिर व पीठ पर खूब पुचकारा, थपथपाया और बोले, 'जाओ! तुम्हारा कल्याण होगा।'

- शांतिस्वरूप गुप्ता

❖❖❖

अहं पर चोट

(42)

ई. सन् १६७० की बात है – अहमदाबाद में टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज के सभा कक्ष में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का प्रवचन था। मैं महाराज की सेवा में था। प्रवचन अध्यापन एवं शिक्षण के संबंध में था। अतः शिक्षक होने के नाते मेरे लिए भी रुचिकर था।

महाराजजी की कुर्सी ऊँचे प्लेटफार्म पर लगाई गई थी और मैं नीचे सामने वाली पहली लाईन में कुर्सी पर बैठा था। संयोजक महोदय ने आग्रह करके मुझे भी स्वामीजी महाराज के पास कुर्सी लगा कर ऊपर बैठा दिया। इससे मैंने बहुत ही आत्मसुख व गौरव का अनुभव किया। स्वामीजी महाराज ने प्रवचन आरम्भ किया। बोले – 'हमारे साथ में पी.एच.डी., पढ़ा-लिखा प्रोफेसर है; हम शब्द कुछ बोलते हैं और वह लिख कुछ और ही देता है..........'

भिड़ते ही ये शब्द मेरे कान में पड़े तो मेरे आत्मसुख और गर्व का पारा उतर गया। अहं पर चोट जो पड़ी थी।

- शरणानुराग (डॉ. बसंत मिश्रा)

❖❖❖

करुणा और प्रेम का दिव्य समन्दर

(43)

इटावा (उत्तर प्रदेश) में ४ दिनों का सत्संग कार्यक्रम था। वर्ष १९६७ की घटना है - स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज तो थे ही, पू. देवकी दीदी भी पधारी हुई थीं। दोपहर का समय - स्वामीजी महाराज भोजनोपरांत शयन कर रहे थे। उस दिन उन्हें ब्लड़प्रेशर अधिक था - मधुमेह की शिकायत भी थी। दीदी के कठोर निर्देश थे कि सोते समय स्वामीजी को कोई भी जगावे नहीं। अतः मैं बरामदे में बैठा हुआ चौकसी बरत रहा था।

थोड़ी देर बाद ही तेज धूप में एक गरीब बूढ़ी माताजी वहाँ आईं और मुझसे कहा - 'बेटा! मैं महाराज के दर्शन करने दूर गाँव से आई हूँ मुझ उनसे मिला दो।' मैंने धीरे से कहा, 'माताजी अभी स्वामीजी सो रहे हैं उनकी तबियत खराब है। अतः आप यहाँ एक तरफ बैठ जायं। स्वामीजी के उठते ही मैं आपको उनसे मिला दूँगा।' इतनी ही देर में स्वामीजी बोले, 'बसंत! कौन आया है? रोको मत, भीतर आने दो।' मैंने स्वामीजी से निवेदन किया। 'महाराज! ब्लड़प्रेशर अधिक है, अतः आप विश्राम कर लें।' स्वामीजी बोले, 'मेरे कर्त्तव्य को मत समझाओ, आने वाले को आने दो।'

यह सुनते ही माई कमरे में घुस गई। उनके हाथ में मीठी राब का एक कुल्हड़ था जो उन्होंने स्वामी के हाथ में थमा दिया और बोलीं, 'महाराज! मैं दूर गाँव से आपके दर्शन करने आई हूँ। यह मेरे हाथ की मीठी राब है, पी लो। मेरा जीवन धन्य हो जाएगा।' उस क्षण डाक्टरों का परामर्श, दीदी का कड़ा अनुशासन व मेरी चौकसी धरे रह गई। महाराजजी ने मीठी राब का सारा कुल्हड़ गटागट पी डाला। मैं देखता रह गया। उनके चेहरे पर करुणा और प्रेम के दिव्य समन्दर की जो छवि मैंने देखी उससे मैं अभिभूत हो गया।

- शरणानुराग (डॉ. बसंत मिश्रा)

❖❖❖

व्यथा व बेबसी

(44)

बहराइच (उत्तर प्रदेश) का एक संस्मरण है। सन् १९६७ ई. की बात है - ४ दिनों के सत्संग-समारोह का आयोजन धर्मशाला में किया गया था। वहीं हमारे आवास की व्यवस्था थी। मानव सेवा संघ के तत्कालीन महामंत्री झालानीजी दादाजी भी पधारे थे। हुआ यों कि कहीं दूसरे नगर से पधारे हुए किन्हीं सज्जन को, झालाणीजी ने, स्वामीजी महाराज से परामर्श किए बिना ही, आगामी सत्संग की तिथियां निर्धारित करके नोट करा दीं। सज्जन के बहराइच से वापस जाने के पश्चात् स्वामीजी को उन तिथियों की जानकारी दी गई। संयोग से वे तिथियां तो पहले से ही अन्य किसी स्थान के सत्संग के लिए निर्धारित की जा चुकी थीं। स्वामीजी महाराज ने दादाजी को उनकी इस गलती के लिए जोर से डाँट पिलाई कि महामंत्री के दायित्वपूर्ण पद पर होते हुए उन्होंने ऐसी लापरवाही व प्रमाद किया। थोड़ी देर बाद झालानीजी ने स्वामीजी महाराज के पास जाकर इस भूल के लिए क्षमा माँगी तो महाराजजी ने करुणित होकर उनका सिर अपने वक्षस्थल के पास लगा लिया और बोले, 'भैय्या! साधक का अधूरापन व उसके प्रमाद को देखकर मैं व्यथित हो जाता हूँ जो मेरी बेबसी है। बाद में तो उसके दुःख से मुझे स्वयं को भी दुःख होता है। पर साधक की गलतियाँ मुझसे देखी नहीं जातीं।'

- शरणानुराग (डॉ. बसंत मिश्रा)

❖❖❖

व्यक्तिगत हित व सीमित आत्मसुख

(45)

सन् १९६९ ई. की बात है – एक रिटायर्ड ब्रिगेडियर (नाम विस्मृत हो गया) ने देवलाली स्थित अपने आवास पर स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सान्निध्य में भव्य सत्संग - समारोह आयोजित किया था। स्थान अत्यंत रमणीक व शांत था जहां साधकों व संतों के लिए आवास की व्यवस्था थी। भोजन की भी अति सुन्दर व्यवस्था थी। मुझे वह स्थान शांति-संपादन एवं एकांत-साधना के लिए बहुत अच्छा लगा। मैंने स्वामीजी महाराज से निवेदन किया – 'महाराज! मैं भी ऐसे किसी एकांत स्थान पर आवासित होकर साधना करना चाहता हूँ।'

महाराजजी ने छूटते ही कहा, 'बसंत! तुमने मानव सेवा संघ के दर्शन को गहराई से नहीं समझा है। यह तो तुम व्यक्तिगत हित की बात सोच रहे हो, जिसमें सीमित आत्मसुख की भावना टपकती है। सच्ची साधना परिस्थिति विशेष के आश्रित होने से नहीं हुआ करती। प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करने से होती है।' यह कहकर स्वामीजी महाराज थोड़ी देर के लिए मौन हो गए।

फिर विनोदपूर्ण भाषा में कहने लगे, 'चलो पहले गरम-गरम कॉफी पी लो, फिर एकांत-साधना की बात करना।'

- शरणानुराग (डॉ. बसंत मिश्रा)

❖❖❖

दूसरों के अधिकारों की रक्षा

(46)

राजस्थान सरकार के सुखाड़िया मंत्रीमंडल में श्री रामकिशोरजी व्यास स्वायत्त शासन मंत्री थे तब की यह बात है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के विषय में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के विचार क्रांतिकारी व मौलिक थे। इसकी जानकारी जब व्यासजी को मिली तो उन्होंने मंत्रीमंडल के सदस्यों को उनसे अवगत कराने का निश्चय किया। श्री रामेश्वरजी अग्रवाल के माध्यम से 'हम, हमारा देश व हमारा कर्त्तव्य' विषय पर जयपुर के रामनिवास बाग स्थित रवीन्द्र रंगमंच पर स्वामीजी के प्रवचन का कार्यक्रम रखा गया। समय सायंकाल ५.०० बजे का तथा स्वामीजी को प्रेम निकेतन आश्रम दुर्गापुरा से रवीन्द्रमंच तक लाने-ले जाने का काम मेरे जिम्मे रखा गया था।

आश्रम से कार द्वारा ठीक ४.३० बजे हम लोग रवाना हुए। २० मिनिट में रवीन्द्रमंच के निकट पहुँच गये। स्वामीजी को मैंने जब इसकी जानकारी दी तो उन्होंने मुझे कहा, 'दुर्गाप्रसाद भाई! हमें ठीक समय पर ही सभा स्थल पर पहुँचना चाहिए।' यह कहकर १०० गज पहले ही गाड़ी रुकवा दी और बोले — 'देखो! जैसे देर से पहुँचने से श्रोतागणों के अधिकार का हनन होता है वैसे ही जल्दी पहुँचने से आयोजकों के लिए धर्म संकट खड़ा हो जाता है। अपने को तो हर परिस्थिति में दूसरों के अधिकारों की रक्षा करनी है।'

मैं मन ही मन स्वामीजी महाराज की जागरुकता के प्रति नतमस्तक था।

- **हरिशरणागत**

यह तो बेवकूफवाद है

(47)

मानव सेवा संघ के वृंदावन आश्रम में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के सान्निध्य में भौतिकवाद, अध्यात्मकवाद व आस्तिकवाद पर चर्चा चल रही थी। स्वामीजी महाराज ने जब यह फरमाया कि सच्चे भौतिकवादी को भी वही जीवन मिलता है जो अध्यात्मवादी या आस्तिकवादी को — तो एक सज्जन ने कहा 'महाराज! हम तो भौतिकवाद का मतलब खाओ, पीओ और मौज उडाओ समझते हैं।' स्वामीजी महाराज तपाक से बोले —

'नहीं, बिलकुल नहीं। यह तो बेवकूफवाद है। सच्चे भौतिकवादी की प्रत्येक प्रवृत्ति परहित के लिए होती है। वह कर्म सामग्री को दूसरों के अधिकार की रक्षा में लगाता है, भोग में नहीं। भोगी तो भोग भोगता है अपनी मर्जी से और दुःख भोगता है विवश होकर जिसे बेवकूफी ही कहेंगे। अतः सच्चे भौतिकवादी के जीवन में सुख भोग के लिए कोई स्थान नहीं होता। सेवा करके करने के राग से मुक्त हो चिरविश्राम की प्राप्ति करना ही उसका लक्ष्य होता है।'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

बाल सेवा ही प्रभु-पूजा

(48)

अठारह-उन्नीस वर्ष की उम्र में श्री महाराजजी ने सन्यास लिया तब सन्यास देने वाले गुरु ने चलते समय उन्हें कह दिया – "बेटा! जब तुम आजाद हो जाओगे तो सारी प्रकृति तुम्हारी सेवा के लिये लालायित रहेगी, चराचर जगत् तुम्हारी आवश्यकता पूर्ति के लिए तत्पर रहेगा।" यह बात प्रत्यक्ष रूप से हमने स्वामीजी के जीवन में देखी। वस्तुएं बिना मांगे आवश्यकता से पूर्व स्वतः ही उनको मिलती रहतीं किंतु उनका भोग वे स्वयं न करके दूसरों के लिए उपयोग करते थे।

ग्रीष्मकाल में आमों से भरी टोकरियां आतीं तो पहले बाल मंदिर की बालिकाओं के लिए छांटकर उन्हें पानी में भिगोया जाता। फिर महाराज अपने हाथों से बड़े प्यार के साथ हमें खाने को देते थे। शायद मां से भी बच्चे के लालन-पालन में चूक हो जाय पर स्वामीजी के यहां तो चूक का सर्वथा अभाव था। **वे तो बाल सेवा को प्रभु-पूजा मानते थे।**

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

पीर हरो हरि, पीर हरो

(49)

बात उस समय की है जब स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज मानव सेवा संघ, वृंदावन की संत-कुटी में निवास करते थे। एक रात एक कुतिया, महाराजजी की कुटी के बाहर आकर जोर-जोर से रोने लगी। काफी देर तक उसका रोना सुनकर महाराजजी से रहा नहीं गया। उन्होंने पास बैठी आश्रम की श्रद्धा-माताजी से पूछा, 'माताजी यह कुतिया क्यों रो रही है?' माताजी ने पता लगाकर बताया कि 'इस कुतिया के पिल्ले को कोई उठा ले गया, इस कारण यह रो रही है।'

यह सुनकर महाराजजी उसके दुःख से अत्यंत करुणित हो गये और कहने लगे, 'हे प्रभु! यह तो मोह की पीड़ा से पीड़ित है, इसकी पीड़ा दूर करो' रात्रि भर महाराजजी ने भी जागरण किया और उस कुतिया के लिए 'पीर हरो हरि, पीर हरो हरि' प्रार्थना करते रहे। प्रातः काल होते ही किन्हीं अनजान व्यक्ति ने लाकर पिल्ले को कुतिया के पास रख दिया। कुतिया अपने पिल्ले को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुई, और रोना बंद कर दिया। उसे चाटने लगी, प्यार करने लगी। इस तरह कुतिया की प्रसन्नता को देखकर महाराजजी भी प्रसन्न हो गए।

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

कोई और नहीं, कोई गैर नहीं

(50)

२५ दिसम्बर १९७४ ई. को, जो हिन्दुओं के लिए गीता-जयंती (मोक्षदा एकादशी) दिवस, क्रिस्तानों के लिये बड़ा दिन और मुसलमानों के लिये ईद-उल-जुहा का दिन था, स्वामीजी का स्वर्गारोहण हुआ। उनकी हिदायत के अनुसार उनकी कोई समाधि नहीं बनी। वे व्यक्ति-पूजा के खिलाफ थे। यहां तक कि उन्होंने अपनी पुस्तकों में अपना नाम भी नहीं देने दिया। आज वृंदावन आश्रम की संत-कुटी में टंगी तख्ती पर लिखे दो वाक्य, 'कोई और नहीं, कोई गैर नहीं' - अमर सूक्तियों के उस लाड़ले, विरल संत की मार्मिक स्मृतियां जगा जाते हैं और स्मरणमात्र से मन का मैल छंटने लगता है। स्वामीजी के जीवन का सारांश है कि -

'सेवा, त्याग और प्रेम में ही मानव-जीवन की पूर्णता निहित है।'

- प्रो. केशरी कुमार

❖❖❖

कहो यार! कैसी कही?

(51)

मैं, स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज के पास बैठा हुआ गपशप कर रहा था कि गीताप्रेस के संस्थापक श्री जयदयालजी गोयनका एकाएक आ गये। थोड़ी देर बैठने के पश्चात् बोले - 'महाराज! मैं वेद और उपनिषद् चाट गया। शास्त्र-पुराण सब पढ़ गया। अनेक ग्रंथ कंठाग्र हैं। वर्षों से 'कल्याण' में असंख्य जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर देता रहा हूं। कितनों का समाधान करता रहा हूं। किन्तु महाराज! मुझे कुछ हाथ नहीं लगा। कोरा का कोरा हूं' और वे अत्यंत द्रवित हो गए। उनके अश्रुपात होने लगा।

मैंने एकान्त में स्वामीजी से पूछा - 'महाराज! जब इन महापुरुषों की यह दशा है तब हम जैसों की, आपके मार्ग में, क्या गति होगी?' स्वामीजी एक क्षण चुप रह कर बोले- 'गोयनकाजी के आंसू के रूप में धुँआ निकल रहा है भाई, जो इस बात का लक्षण है कि लकड़ी में आग लग चुकी है। अध्ययन ईंधन है न, जले तो मुक्ति न जले तो बंधन।'

स्वामी जी का उत्तर सुन कर मैं स्तब्ध रह गया कि पांचवे दर्जे तक पढ़ा यह अंधा साधु, बोध के किस क्षितिज पर रहता है और किस प्रकार इसने शास्त्र और साहित्य के मर्म को सम्पुटित कर रखा है।

मुझे चुप देखकर वे फिर ठहाका मारते हुए बोले, 'निराश न हों। तुम्हारे लिए भी एक नुस्खा है। **भारी बोझ लेकर चलने वाले को देर होती ही है।** गोयनकाजी ने अपने माथे पर वेद-पुराण का भारी गट्ठर लाद रखा था, सो उन्हें पहुंचने में देर हुई। **तुम्हारे माथे पर हल्का बोझ है, जल्दी पहुंच जाओगे। बोझा पटक दो तो और जल्दी।** कार्तिकेयजी ब्रह्माण्ड परिक्रमा करते ही रहे और गणेशजी पिता के चारों ओर घूम कर अव्वल हो गये।' फिर जोर का ठहाका,- 'कहो यार, कैसी कही!' फिर तो मैं स्वामीजी से अधिक सम्पर्कित हुआ। कई बार भ्रमण में भी साथ रहा।

- प्रोफेसर केसरी कुमार

(पारिजात प्रकाशन, पटना द्वारा प्रकाशित -स्मृतियों में अब भी (संस्मरण) पुस्तक से साभार)

❖❖❖

तेरी बिकी हुई जिन्दगी लेकर क्या करूंगा?

(52)

एक युवक स्वामीजी के पास आये और बोले 'महाराज! मैं आपके पास रहकर सेवा में अपना जीवन लगाना चाहता हूं।'

स्वामाजी ने पूछा, 'तुम्हारी शादी हो चुकी है या अभी नहीं हुई है।'

युवक ने जब बताया कि वह शादीशुदा है तो महाराज ने फरमाया, 'अरे यार! तेरी बिकी हुई जिन्दगी लेकर मैं क्या करूंगा?'

- **हरिशरणागत**

❖❖❖

उन्हें भी मिलता ईश्वर ही है

(53)

स्वामी जी महाराज फरमाते थे कि ''मैं पक्का ईश्वरवादी हूं, परन्तु ईश्वरवाद का प्रचारक नहीं हूं। क्या मेरा भगवान इतना घटिया है जो मैं उनके लिए कहूं कि उन्हें याद करो, उनके नाम की माला जपो। सौ दफा गरज होवे तो उनको याद करो, उनकी पूजा करो। मैं क्यों कहूं? मैं तो कहता हूं कि दुनियां में कोई भगवान को न माने पर ''मैं'' और ''वह'' केवल दो रह जायेंगे तो भी काम बन जाएगा।''

किसी अन्य प्रसंग में स्वामीजी महाराज ने फरमाया था – 'जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, लेकिन उनके विधान को मानते हैं, उन्हें भी मिलता ईश्वर ही है। क्योंकि, ''मैं'', ''यह'' और ''वह'' – ये तीन ही हैं। चौथी चीज सृष्टि में है ही नहीं। अतः ''है'' के अर्थ में केवल वही रह जाता है जो ''है''। उसे ईश्वर कहो या परमात्मा – एक ही बात है।

- हरिशरणागत

❖❖❖

ठोकर से ठाकुर

(54)

वर्ष १६७० की बात है। मानव सेवा संघ, वृंदावन बाल मंदिर की हम दो लड़कियाँ इंटरमीड़िएट परीक्षा में असफल रहीं। दोनों ही अंग्रेजी भाषा में पूरक आईं। पूज्य पिताजी (स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज) को इस बात का पता चला तो उन्होंने एक पत्र लिखवाया। उसका थोड़ा सा अंश इस प्रकार है–

'परीक्षा की असफलता की व्यथा से तुम्हारे जीवन में एक क्रांति आनी चाहिए। दुःखी होकर निराश मत होना अपितु जीवन में एक नित नव उत्साह जगाकर, कर्तव्य में दृढ़ हो जाना चाहिए। सफलता अवश्यम्भावी है। हार मानकर बैठना भारी भूल होगी। उसका मानव के जीवन में कोई स्थान ही नहीं है। जो हार स्वीकार नहीं करता, वह विजयी अवश्य होता है।'

उनके इस उद्‌बोधन ने ठोकर से ठाकुर बनने की कला हमें सिखाई। आज हम पूरी तरह कृतकृत्यता का अनुभव कर रही हैं।

- कु. गंगा डागा

❖❖❖

देश नेतृत्व विहीन हो जाएगा

(55)

भारत की आजादी के पश्चात् संविधान सभा के अध्यक्ष और बाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने भारतीय संविधान के संबंध में स्वामीजी से चर्चा की थी। स्वामीजी ने उन्हें परामर्श दिया था कि संविधान का निर्माण चोटी के वीतराग महानुभावों द्वारा होना चाहिए। जिसका अर्थ लगाने के लिए बड़े-बड़े विधिवेत्ताओं की सहायता की आवश्यकता होती है, उसका निर्माण साधारण लोगों के वश का नहीं। उन्होंने यह भी कहा था कि सरकार को कानून बनाने वाला न होकर सिर्फ उसका पालन कराने वाला होना चाहिए। बल्कि सरकार में चोटी के नेताओं को जाना भी नहीं चाहिए क्योंकि यदि ऐसे नेता सरकार में चले जायेंगे तो देश नेतृत्व-विहीन हो जायेगा।

आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि आजादी के पश्चात् भारत नेतृत्व-विहीन होता जा रहा है।

- प्रो. केशरी कुमार

❖❖❖

स्नेह और वात्सल्य का चमत्कार

(56)

पूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का विचार था कि हर बालक को, उसके स्वाभाव के अनुरूप विकास का अवसर देने के लिए उसका लालन-पालन एवं शिक्षण रक्षण उनके द्वारा हो, जिन्होंने अपने मन को वश में किया है। जो निःस्वार्थ सेवा करते हैं, जो प्राकृतिक ढंग से बच्चों को रख सकते हैं, जो हर बच्चे को प्रेमपूर्वक आवश्यक सहयोग दे सकते हैं, जिनका हृदय निर्वासना एवं निष्कामता से निर्मल हो गया है, जो सच्चे हृदय से बच्चों को मोह-रहित प्यार दे सकते हैं, वे ही बाल-मंदिर के शिक्षक एवं संचालक होकर सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इसीलिए मानव सेवा संघ के वृंदावन आश्रम में बालिकाओं के लिये वर्ष १९५८ में अक्षय तृतीया के दिन बाल मंदिर की स्थापना की गई। पूज्य दादाजी (श्री रामेश्वरजी अग्रवाल) की कृपा से स्वामीजी महाराज के श्री चरणों तक पहुंचने का सौभाग्य मुझे भी मिल गया और मैं इस बाल मंदिर में प्रवेश पा सकी। यह बात सन् १९६७ की है जब मैं सात वर्ष की थी और तीसरी कक्षा की छात्रा थी।

मुझे अंगूठा पीने की आदत थी। आश्रम के संचालकों ने मेरे पिताजी को पत्र लिखा कि, "आपकी बालिका निरन्तर अंगूठा पीती है, समझाने पर भी नहीं छोड़ती। उसके इस आचरण का अन्य बालिकाओं पर भी विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। अतः आप यहां आकर अपनी बालिका को वापस ले जायें।" मेरे पिताजी ने अपने वृंदावन पहुंचने की तिथि की सूचना देते हुए सूचित कर दिया कि वह अमुक दिन आकर

मुझे ले जायेंगे, परन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। आश्रम के साधकों के स्नेह और वात्सल्य के द्वारा मेरी आदत बदली जा सकती है, ऐसा मुझे प्रकाश मिला।

एक दिन बाबूजी (श्री विश्वनाथलालजी) ने कहा कि तुम प्रभु से अपनी इस कमजोरी के लिए व्यथित हृदय से प्रार्थना करो। इस महामंत्र को मैंने अपनाया। सचमुच डेढ़ माह के भीतर ही मेरी अंगूठा पीने की आदत छूट गई। मुझे स्थायी रूप से बाल मंदिर में स्थान मिल गया। आज मेरा रोम-रोम मानव सेवा संघ का ऋणी है। **स्नेह और वात्सल्य के चमत्कार ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।**

मानव सेवा संघ के विषय में तो मैं क्या लिखूं। वह तो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से साधक समाज का अथाह सागर है जिसका वर्णन करना संभव नहीं। इस संघ के दर्शन ने मानव मात्र के लिए सेवा, त्याग, प्रेम द्वारा साधन निर्माण करके अपना कल्याण व सुंदर समाज का निर्माण करने का सहज व सरल मार्ग प्रशस्त किया है। **इसका दर्शन समाज में द्रुत गति से फैले इसी मंगल कामना के साथ।**

रेणू चौधरी

❖❖❖

गुड़ खाने की आदत और मैं

(57)

मानव सेवा संघ, वृंदावन द्वारा संचालित बाल मंदिर वर्ष १९५८ में आरंभ हुआ तब मेरी उम्र छः वर्ष की थी। मैं बाल मंदिर के पहले बैच की छात्रा थी। मुझे गुड़ खाने की अत्यधिक आदत थी। माधवी दीदी ने बताया कि जब उन्होंने स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को मेरी इस आदत के बारे में बताया तो उन्होंने दीदी से कहा, 'रात में यह सोए तब गुड़ की एक भेली इसके सिर के पास रख दिया करो।'

दीदी ने २-३ मर्तबा ऐसा किया और मेरी गुड़ खाने की आदत स्वतः धीरे-धीरे नार्मल हो गई।

इसी प्रकार एक दिन मेरे बहुत अधिक हठ करने व उसके पूरा न होने के कारण रोने पर राठी भाईजी (मेरे मामाजी, जिन्होंने मामीजी की अल्पायु में मृत्यु हो जाने के कारण अपना जीवन स्वामी जी महाराज को अर्पित कर दिया था) ने मुझे पीटा। इस बात की जानकारी स्वामीजी महाराज को हुई तो उन्होंने राठी भाईजी को बुलाकर अपनी [illegible]नगी जताई व कहा 'मोह का संबंध मानकर अधिकार-भावना से तुमने लड़की को पीटा। आगे से बाल मंदिर की अन्य बालिकाओं की तरह से इसे मानो, मोह का संबंध मत मानो। अगर रोती है तो रो लेने दो। ज्यादा रोने पर इसे अकेली छत पर छोड़ दिया करो। जब खूब रोलेगी तो अपने आप चुप हो जावेगी।'

प्रीति और अपनेपन की भावना से लबालब भरे पावन चरणों में वंदन।

- प्रेषक- कु. गंगा डागा

❖❖❖

उसी को मैं ईश्वर कहता हूँ

(58)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज एवं श्री जे. कृष्णमूर्तिजी जीवन में केवल एक ही बार मिले थे। उस समय चर्चा में निषेधात्मक विचारधारा, जो कृष्णमूर्तिजी के संबंध में चर्चित थी, को उन्होंने स्वयं ने अस्वीकृत कर दिया था। यह स्पष्टीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण था।

उसी बैठक में एक और प्रमुख विचार पर चर्चा हुई। स्वामीजी ने कृष्णमूर्तिजी से पूछा, 'आपको विचार आते हैं तो एक विचार के बाद जब दूसरा विचार आता है तो दोनों विचारों के बीच आप कहाँ रहते हैं?'

कृष्णमूर्तिजी ने कहा, 'रहता तो हूँ पर बता नहीं सकता कि कहाँ रहता हूँ'।

स्वामी जी ने फरमाया, 'दो विचारों के बीच की उस स्थिति को ही मैं ईश्वर कहता हूँ।'

संभवतः उनका आशय था कि जब "मैं" नहीं रहता तब "ईश्वर" रहता है। थोड़ा चुप रहने के पश्चात् कृष्णमूर्ति जी ने कहा - इस पर मैं विचार करूँगा।

- **कन्हैयालाल लोढ़ा**

❖❖❖

जागृत स्थिति में सुषुप्तिवत्

(59)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को मैंने क्यूँ और कैसे पहचाना और उनके दर्शन में मेरी रुचि कैसे जगी? यह जानने के लिए आवश्यक है कि मैं मेरा थोड़ा सा परिचय दूं। मैं धर्म से जैन हूँ। कर्मकांड़ से रहित भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित, विवेक पर आधारित सिद्धान्तों का मैंने अध्ययन किया। मैं केकड़ी कस्बे में रहा, जो दार्शनिक चर्चाओं और शास्त्रार्थों का गढ़ रहा। बड़े तार्किकों के संपर्क में आया। मेरी विचारधारा उस वातावरण से प्रभावित थी। अंध विश्वास और सिद्धान्तरहित आस्था में मेरी कोई रुचि नहीं थी।

मैं अध्यापन का कार्य करता था। बीकानेर गया था। वहाँ एक सज्जन श्री बंसीधरजी बियाणी मिले जो स्वामी श्री शरणानंदजी व स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज - दोनों के प्रति श्रद्धा रखते थे। उन्होंने मुझे शरणानंदजी की एक पुस्तक - 'जीवन दर्शन' दी। मुझे ऐसा लगा कि मैं धर्म नहीं विज्ञान पढ़ रहा हूँ। उसमें सिद्धान्तों का प्रतिपादन नैसर्गिक नियमों पर आधारित था। फिर भी कुछ शंकाएँ थीं। उनके समाधान के लिए मैंने स्वामीजी को वृंदावन पत्र लिखा। वहाँ से पत्र मिला कि स्वामीजी से संपर्क करने मैं अजमेर जाकर श्री लक्ष्मीलालजी जोशी से मिलूँ। मुझे नहीं पता था कि जोशीजी कौन हैं? दोपहर को जब उनके घर पहुँचा तो यह जरूर आभास हुआ कि ये कोई विशेष व्यक्ति हैं। असमय पहुँचने के कारण वह बहुत नाराज हुए। जब मैंने बताया कि वृंदावन आश्रम के निर्देश पर मैं उनसे मिलने आया हूँ तो उन्होंने मेरा सत्कार किया।

मेरे पूछने पर भी उन्होंने नहीं बताया कि वे क्या करते हैं। बहुत जोर देने पर इतना कहा कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड़ में काम करते हैं। बाद में पता

चला कि वे तो बोर्ड के अध्यक्ष हैं। उसके पहले वे राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष थे। उसके पूर्व राज्य सरकार में प्रमुख सचिव थे। ऐसे अकिंचन भक्त स्वामी शरणानंदजी के ही हो सकते हैं।

बाद में जोशीजी ने मुझे सूचना भिजवाई और मैं स्वामीजी से अजमेर आकर मिला। मेरी पहली चर्चा में मैंने स्वामीजी से पूछा, "आपने अपनी प्रार्थना में यह कहा है - 'मेरे नाथ! आप अपनी, सुधामयी, सर्व समर्थ, पतितपावनी, अहैतुकी कृपा से .... आदि।' जब भगवान् अहैतुकी कृपा करते हैं और वो सर्व समर्थ भी हैं तो फिर कृपा करके हमारे सारे दुःखों व विकारों को दूर क्यों नहीं कर देते?"

स्वामीजी ने फरमाया, 'अभी इसको छोड़ो अपनी समस्या क्या है, वह बताओ।' मैंने उनसे निवेदन किया कि केकड़ी पधारें। उन्होंने फरमाया, 'लोढ़ा! तुम मुझे क्यों ले जाते हो? वहाँ ले जाकर घाटे में रहोगे।' मैंने पूछा, 'मैं घाटे में कैसे रहूँगा?' बोले 'तुम मुझे बाहर ही से तो देखोगे।' उनका आशय यह था कि उनके बाहरी क्रियाकलाप मेरे धार्मिक व दार्शनिक क्रिया-कलापों के अनुरूप नहीं थे। मैं शायद उनको सही रूप में नहीं पहचान पाऊँ। फिर भी मैंने उनके केकड़ी पधारने का निवेदन दोहराया।

जब मुझे लगा कि केकड़ी पधारने का उनका मन बन गया है तो मैंने पूछ लिया कि 'कब तक पधारने की संभावना हो सकती है' तो बोले 'फुटबाल को क्या मालूम कि खिलाड़ी कब और किधर किक लगाएगा?' खिलाड़ी का आशय उनका भगवान् से था।

२-३ माह बाद श्री लक्ष्मीलालजी जोशी उन्हें केकड़ी लेकर पधारे। काफी विद्वानों का जमावड़ा लगा, काफी चर्चाएं हुईं। जैसा मैंने पहले बताया है कि केकड़ी शास्त्रार्थ के लिए प्रख्यात था। उन्होंने आस्तिक व नास्तिक सभी के सटीक उत्तर दिए। उन्होंने बाद में मुझे कहा कि पहली बार मैंने ऐसा स्थान देखा जहाँ दार्शनिक ही दार्शनिक रहते हैं - जिज्ञासु कोई नहीं। फिर बोले कि आज का मेरा दिन व्यर्थ गया। किसी ने अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं रखीं और समाधान नहीं पूछा। केवल तार्किक संवाद ही हुए।

उसी सभा में श्री क्रान्तिचंद्रजी कटारिया ने, जो एक व्यवसायी होने के साथ विद्वान् भी थे, स्वामीजी से पूछा/प्रश्न किया, 'आप फरमाते हैं कि निर्विकल्प हो जायें। निर्विकल्प तो दीवार होती है। कोई निर्विकल्प हो तो उदाहरण देने की कृपा करें।' स्वामीजी ने फरमाया - कटारियाजी! और किसे बताऊं, आप स्वयं ही जब गहरी नींद में होते हैं, उस समय निर्विकल्प होते हैं। स्वप्न भी नहीं आता। मेरा निर्विकल्पता का आशय दीवार की निर्विकल्पता से नहीं है। मेरा आशय जागृत अवस्था की निर्विकल्पता से है। ऐसी निर्विकल्पता विवेकपूर्वक समता और कामना रहित होने पर ही होती है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति मैं आपको बता दूँगा, तो आप पहचानेंगे कैसे? आप स्वयं जब उस जागृत स्थिति में सुषुप्तिवत् निर्विकल्प होंगे तभी आपको उसका बोध होगा।

- कन्हैयालाल लोढ़ा

❖❖❖

मैं कृतकृत्य पाता हूं - अपने आपको

(60)

मैं बचपन से बहुत ही तार्किक बुद्धि का था। विचार-गोष्ठी हो, धर्म चर्चा का अवसर हो, कहीं भी जाता तो सबको लाजवाब कर देता था। बड़ा हुआ तो धार्मिक बातों में जहां कहीं चर्चा हो- मैं सबको चुप कर देता। पहले के जमाने में जो शास्त्रीय वाद-विवाद होते थे उनमें भाग लेने की वृत्ति से ही मैंने अनेक धर्मग्रंथों का अध्ययन भी किया।

जैन ग्रंथों का मैंने गहराई से अध्ययन किया परंतु मेरे प्रश्नों का पूरा समाधान मुझे नहीं मिला। मैंने बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म आदि अनेक धर्मों के ग्रंथों को भी पढ़ा। कुछ बातों का समाधान तो हुआ परंतु मन में अनेक नए प्रश्न खड़े हो जाते। यह हालत लम्बे समय तक चली।

सन् १९५४ के लगभग स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से मिलना हुआ। शुरू में तो उनसे भी पूरा संतोष नहीं प्राप्त हुआ। परंतु उनके दर्शन पर आधारित उनके मूल साहित्य का मेरा अध्ययन ज्यों-ज्यों बढ़ता गया मुझे समाधान होता गया। **आज मैं कह सकता हूं कि शरणानंदजी के साहित्य में जो समाधान मुझे मिला और मेरे सारे प्रश्नों का ऐसा सटीक उत्तर मिला कि न सिर्फ धार्मिक मामलों में ही, बल्कि सृष्टि के रहस्यों की जानकारी करने के लिए जो ज्ञान चाहिए - वह मुझे अनायास इस संत के साहित्य में मिल गया।** अब मेरे जीवन में कोई अनसुलझा प्रश्न नहीं बचा ऐसा मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। **मैं कृतकृत्य पाता हूं अपने आपको।**

श्री कृष्णलाल गुप्ता के घर पर दिनांक 22-08-04 (रविवार) के दिन हुए सत्संग समारोह के अवसर पर श्री कन्हैयालाल लोढ़ा द्वारा शरणानंदजी के साहित्य बाबत व्यक्त किए गए उद्गारों का सार

— हरिशरणागत

❖❖❖

यह मन, है क्या?
(61)

रांची की ही एक घटना और है। देवकीजी स्वामी जी महाराज की खाट के पास बैठी थीं, मैं एकाएक वहां पहुंचा। देवकीजी ने महाराज से कहा - 'केसरी भैया आये हैं।' और स्वामी जी बच्चों की तरह उछल पड़े - 'केशरी भैया? कहां हो भाई? और मैं उनकी फैली बाहों में था। वे केश, माथा, कपाल, आंख, नाक, कान, ठुड्डी, गरदन, छाती, बांह सब टटोल रहे थे। पोर-पोर, जैसे कोई प्रतिमूर्ति बनानी हो और कहते जा रहे थे - 'दोस्त, गांधीजी की नजर वकीलों पर थी, हमारी नजर प्रोफेसरों पर है।'

तभी एक वृद्ध वकील साहब आये जो रांची में गांधीजी के आतिथेय थे और जिन्हें रांची वाले प्यार से नगर पिता कहते थे। आते ही बोले - 'स्वामीजी! मन अब तक न मरा। कोई ऐसी चाबुक बताइये जिससे मार-मार कर इसे खत्म करदें।'

स्वामीजी ने फरमाया -

'गांधी जी का मेजबान होकर भी आप मारने की बात करते हैं। बलपूर्वक मारने की जितनी चेष्टा करेंगे, मन उतना ही प्रबल होगा। आपही की सत्ता से सत्ता पाकर मन आप पर शासन करता है। मन आपका है, आप मन नहीं हैं। अतः न तो उसे बलपूर्वक मारने की चेष्टा करो न सहयोग करो। गांधीजी का अमोघ अस्त्र है 'असहयोग।' मन से असहयोग करो। मन के जुलूस को देखते रहिए उसमें शमिल न होइये। बस मजा आ जाएगा। मुश्किल यह है कि आप चाहते हैं क्रांति और करते हैं आन्दोलन।'

इस बिन्दु पर, वकील साहब को, जो रुआंसे हो गए थे, थोड़ा सहारा मिला और वे आगे सरकते हुए बोले - 'महाराज! आन्दोलन और क्रांति तो एक ही चीज है। आन्दोलन न करेंगे तो क्रांति होगी कैसे?'

स्वामी जी बोले-

'नहीं महाराज! आन्दोलन है बलपूर्वक अपनी बात दूसरों से मनवाना और क्रांति है हर्षपूर्वक कष्ट सहकर तपना व स्वयं को बदलना और दूसरे पर प्रभाव होने देना। आप करते हैं आन्दोलन और चाहते हैं कि क्रांति हो जाय। आप बदलते नहीं दूसरों को बदलना चाहते हैं। यह नहीं होगा। मन आप नहीं हैं, मन है - **'पर'**, मिला हुआ। आप बदल जाओगे तो मन अपने आप बदल जायेगा। जीवन में क्रांति आ जाएगी।'

थोड़ी देर सन्नाटा रहा जिसे भंग करते हुए स्वामीजी आगे बोले-

'पर भाई! आप हैं पढ़े-लिखे और मैं ठहरा पांचवी तक पढ़ा क्या, बेपढ़ा अंधा। बात न रुचे तो स्वीकार न कीजिए।'

बात निशाने पर लगी और वकील साहब ने कुछ आजिजी से पूछा-

'महाराज! यह मन है क्या?'

स्वामी जी बोले-

'यह मन है भोगे हुए का और जो भोगना चाहते हैं उसका प्रभाव। भुक्त-अभुक्त के प्रभाव के अतिरिक्त मन कुछ नहीं है। **भोग के प्रभाव का नाम मन, भोग के परिणाम का नाम शोक तथा भोग की रुचि का नाम बुराई है।** अब आपही सोचिए कि जिसके कारण का नाश नहीं होगा, अर्थात् भोग की रुचि का नाश नहीं होगा तब तक कार्य अर्थात् मन का नाश होगा?

फिर मेरा नाम लेते हुए बोले -

'केसरी भाई! तुमतो साहित्य के प्रोफेसर हो। भक्ति साहित्य में पढ़ा होगा कि राधाजी बेमन की होगई थीं। क्यों? क्योंकि उनका अपना कोई संकल्प नहीं रह गया था। उन्होंने मन के अपने सारे संकल्प कृष्ण को समर्पित कर दिये थे। और हमारा हाल है कि हम सारे संकल्प अपने लिए रखते हैं, उनका भार ढ़ोते रहना चाहते हैं और चाहते यह हैं कि मन का नाश हो जाय। यह असंभव है।'

- प्रो. केशरी कुमार

❖❖❖

अपना मूल्य संसार से कभी नहीं घटाना

(62)

१९७४ में एम.ए. उत्तीर्ण कर लिया तब मैंने स्वामी शरणानंदजी महाराज को पत्र लिखा कि अब मैं रिसर्च करना चाहती हूं अथवा बी.एड. करना चाहती हूं। तब ४.१०.७४ को उन्होंने पत्र लिखवाया जो मेरे लिए उनका अंतिम पत्र ही रहा। उसका कुछ अंश इस प्रकार है-

'ड़िग्री प्राप्त कर लेने मात्र से समस्या हल नहीं होती। तुम महाविद्यालय की बड़ी ड़िग्री प्राप्त कर चुकी हो। अब पढ़ने की तृष्णा मत करो, जीवन का अध्ययन करो। अपनी वास्तविक मांग जगाओ। ऊँची सेवा तभी होगी जब तुम्हारी मांग पूरी हो जाएगी। सेवक के जीवन में रुचि पूर्ति का कोई स्थान नहीं है। सर्व इन्द्रियों का ब्रह्मचर्य पालन करो, प्रभु विश्वास से हृदय भरलो। तभी तुम सही अर्थ में सेवा कर सकोगी। सेवा परायण साधक को जो काम करना है, उसमें नौकरी सबसे बड़ी बाधा हो जाएगी। पर यह बात तुम्हारी समझ में नौकरी मिलने पर ही आयेगी।'

१९७४ के अक्टूबर माह में मैं उनसे से मिलने वृन्दावन आश्रम आयी। बी.एड. करने का मेरा तीव्र संकल्प देखकर पहले तो खूब डांटा कि बी.एड़. करके नौकरी करना चाहती हो? नौकरी करके क्या करोगी? आदि आदि बहुत कुछ कहा। मुझे बोलने का साहस नहीं हुआ। मैं चुप ही रही। उनका क्रोध दूध के उफान की तरह थोड़ी देर में ही शांत हो जाता था। जब वे कुछ शांत हुए, मुझे बुलवाया और बी.एड़. करने की अनुमति देकर मेरा एडमिशन करवाया, मुझे बी.एड़. करने के लिए हटूंड़ी (अजमेर) भेज दिया। खर्च के लिए बोले, 'तुम्हारे बाप के रहते तुम किसी का

अहसान नहीं लोगी।' इस तरह बी.एड़. का सारा खर्चा अपने निजी फंड़ में से देने के लिए राठी भाईजी को कह दिया कि हर माह जितनी मेरी आवश्यकता हो, मनिआर्डर से हटूंडी भेज दें। दीपावली अवकाश में जब मैं हटूंड़ी से वृंदावन आई तब वहाँ की सारी व्यवस्था विस्तार से पूछी तब उन्हें चैन मिला।

मैं एक दिन रात्रि में उनके पास बैठी थी तब बोले - 'बेटी मेरी बात ध्यान से सुनना। जीवन भर इन बातों को याद रखना। यदि तुम्हें ब्रह्मचर्य से रहना है, तो सादा खाना, सादा पहनना, सादगी से रहना। ईमानदारी, सच्चाई को मत छोड़ना, वर्तमान का सदुपयोग करना तथा अपना मूल्य संसार से कभी नहीं घटाना।' संसार से मूल्य घटाने की बात का आशय पूछा तो बोले, **'बेटी कामना और वासना में फंसा व्यक्ति दृष्य जगत् के चक्कर में आकर हार स्वीकार कर लेता है, पराजित हो जाता है। उस पर संसार हावी हो जाता है, ऐसा मत होने देना।'**

उनकी इस बात की मैंने गांठ बांधली तो ५२ वर्ष की इस उम्र में मैं अपने को हल्का महसूस करके मानव सेवा संघ के परामर्श के अनुसार विश्राम युक्त जीवन व्यतीत करने का महत्व कुछ कुछ समझने लगी हूं। मुझे आशा है संत की अहैतुकी कृपा से मैं अपनी मंजिल पर पहुंच सकूंगी, शांति सम्पादन कर सकूंगी तथा परम विश्राम की ओर अग्रसर हो सकूंगी। विश्वास ही हमारा सम्बल है।

- कु. गंगा डागा

*हर्ष की बात है कि स्वामीजी महाराज के परामर्श के अनुसार कु. गंगा डागा ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है। उन्होंने संसार को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया अतः यदि उन्हें **'महावीर गंगा'** कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।*

❖❖❖

शरणानंद का दर्शन

(63)

'शरणानंद का दर्शन क्या है? अपने दर्शन में श्रद्धा कर लो, शरणानंद का दर्शन हो गया। दर्शन कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान विकल्प रहित स्वीकृति का दाता है। अगर आपका दर्शन जगत् की सत्ता को स्वीकार करता है तो आप घबरायें नहीं। आपके मिथ्या कहने से जगत् मिथ्या नहीं हो जाएगा। आपके अनित्य कहने से अनित्य नहीं हो जाएगा। आप घबरायें नहीं। विरोध भी न करें कि कोई मिथ्या क्यों कहता है। अरे! जिसके दर्शन में जगत् मिथ्या है, वह मिथ्या कहता है। जिसके दर्शन में जगत् मिथ्या नहीं है वह उसकी सत्ता स्वीकार करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आप अपने दर्शन पर अविचल श्रद्धा कीजिए।'

'अगर आपने जगत् की सत्ता स्वीकार की है तो उसका साधन क्या है? उसका साधन है - विवेक-विरोधी कर्म का त्याग। विवेक-विरोधी कर्म का त्याग करते ही जितने दोष हैं जीवन में कर्म संबंधी, वे सब नाश हो जायेंगे। जब विवेक विरोधी कर्म का त्याग करेंगे तब किसी का बुरा नहीं चाहेंगे - तो दुखियों को देखकर करुणित और सुखियों को देखकर प्रसन्न होंगे। करुणित होने से सुख-भोग की रुचि नाश होगी और प्रसन्न होने से काम का नाश होगा। काम का नाश हो जाएगा तो आप अध्यात्म दर्शन में प्रवेश पा जाएँगे। जब अध्यात्म दर्शन में प्रवेश पा जायेंगे तो जगत् की सत्ता स्वतः अस्वीकार हो जाएगी। जब जगत् की सत्ता अस्वीकार हो जाएगी तब आपको अपने ही में अपने प्रेमास्पद की प्राप्ति होगी। यह क्या है? भौतिक दर्शन से अध्यात्म दर्शन में प्रवेश। जब आपको अपने में ही

प्रेमास्पद की प्राप्ति हो जाएगी तब आपका अस्तित्व क्या होगा? केवल प्रेम। जब आपका अस्तित्व केवल प्रेम होगा तब आस्तिक दर्शन में प्रवेश हो जाएगा।'

'इस प्रकार भौतिक दर्शन का अर्थ है - विवेक विरोधी कर्म का त्याग, अध्यात्म दर्शन का अर्थ है - विवेक-विरोधी संबंध का त्याग तथा आस्तिक दर्शन का अर्थ है प्रभु-विश्वास, प्रभु-प्रेम की प्राप्ति।

जहां कर्म का क्षेत्र है वहीं भौतिक-दर्शन है। भौतिक दर्शन का भी जीवन में वही स्थान है जो अध्यात्म-दर्शन और आस्तिक-दर्शन का है। भूल क्या होती है कि हम यह सोचने लगते हैं कि जो हमारी वर्तमान वस्तु स्थिति है, यही सत्य है। पर यह सत्य नहीं है। साधन का आरंभ किसी भी दर्शन के आधार पर हो, समस्त दर्शनों का जो फल है वह आपको प्राप्त हो जाएगा अथवा यों कहो कि समस्त साधनों से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह आपको प्राप्त हो जाएगी। पर कब? जब आप अपने दर्शन के अनुसार अपने साधन का निर्माण करेंगे। साधन के निर्माण में हेतु क्या है? - सत्संग। और कोई साधन नहीं। साधन के निर्माण का साधन है - सत्संग। और सत्संग का स्वरूप क्या है- अपने जाने हुए असत् का त्याग। अपने जाने हुए असत् का त्याग हुआ सत् के संग से, जिससे हुई साधन की अभिव्यक्ति और साधन की अभिव्यक्ति से हुई सिद्धि।'

'इस दृष्टि से प्रत्येक भाई को, प्रत्येक बहन को वर्तमान में ही सिद्धि मिल सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है।'

(स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के प्रवचन से संकलन करके प्रस्तुत)

❖❖❖

विचारों का नाश नहीं होगा क्रांति आयेगी, जरूर आयेगी

(64)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण व स्वामी श्री शरणानंदजी – दोनों आजादी के पश्चात् की परिस्थिति से घोर व्यथित थे। दोनों स्वभाव से क्रांतिकारी थे। स्वामीजी क्रांति को आन्दोलन से भिन्न मानते थे। उनकी दृष्टि में आन्दोलन का अर्थ था – 'बलपूर्वक दूसरों को बुराई से रोकना।' और क्रांति का अर्थ था – 'स्वयं बुराई – रहित होकर दूसरों को प्रभावित होने देना। अपना जीवन बुराई-रहित करने के लिए यदि कष्ट भी सहना पड़े तो हर्षपूर्वक सहना।'

अपनी धर्मपत्नि प्रभावतीजी की भीषण बीमारी और देश की गिरती हुई दशा से पीड़ित जयप्रकाशजी १५ फरवरी, १६७३ को स्वामीजी से मिलने आये। दोनों की वार्ता का एक अंश निम्न प्रकार है–

जयप्रकाश बाबू (व्यथित स्वर में)– 'आज समाजसेवी के नाते मैं अनुभव करता हूं कि कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां भ्रष्टाचार न हो। यह इतना फैल गया है कि इसका इलाज न हो तो जाने क्या हो जाय?'

स्वामीजी – 'क्रांति के बिना परिस्थिति बदलने से कुछ न होगा। हमें ठीक मालूम है। १६३० से १६३५ तक हमने नौकरशाही, टैक्स, मशीन आदि का विरोध किया, परंतु उन्हीं चीजों को हमने, आजादी के बाद कसकर पकड़ लिया। पर निराश न होना चाहिए। शरीर का नाश भले ही हो जाए, विचारों का नाश नहीं होगा। वे काम करेंगे। क्रांति आयेगी, चाहे हमारा शरीर रहे या न रहे। क्रांति आयेगी, जरूर आएगी।'

जयप्रकाश बाबू – 'इस विश्वास के सहारे ही तो हूं, नहीं तो मेरे जैसे व्यक्ति को तो इस दिशा में बिल्कुल अंधकार या निराशा ही दीखती है।'

- प्रो. केशरी कुमारी

❖❖❖

बड़ा ही पुनीत संयोग

(65)

मैंने शरीरों से तादात्म्य-काल में जगत् के प्रति अपनी घोर पराधीनता को देखा। उसी काल में अपने आपमें परम स्वाधीनता की मांग का अनुभव किया। संसार के छूटते हुए सहारों के विषम वियोग की वेदना में अपने को तड़पते हुए पाया। अपने नित्य-प्रीतम को भी स्वयं में अनुभव किया।

आश्चर्य हुआ - यह क्या है?

संत-शिरोमणि श्री महाराज (स्वामी श्री शरणानंदजी) ने कहा -

१ वस्तु खींचती है धरती की ओर।

२ **"मैं" खिंचता है अनंत की ओर।**

शरीरों को लेकर संसार का आकर्षण और 'स्व' को लेकर अनंत का आकर्षण, प्रत्येक मनुष्य में स्वभाव से रहता है। दोनों के द्वन्द्व में फंसा हुआ मनुष्य क्या करे? बड़े असमंजस की दशा है। संसार से आकर्षित होकर उसमें प्रवृत्त होता है तो आदमी सुख-दुःख का भोगी बनता है। अनन्त से आकर्षित होता है तो साधन भजन में लगता है। इसी मिश्रण में बहुत-सा समय गंवा देता है।

भौतिक विज्ञान की दृष्टि से शरीर और संसार की एकता अटूट है। अध्यात्म एवं आस्तिक-विज्ञान की दृष्टि से "मैं" और अनंत परमात्मा की एकता अविच्छिन्न है। अतः शरीर को संसार की सेवा में खपा दो और स्वयं को परमात्मा की प्रीति में लय कर दो - समस्या है ही नहीं। समस्या

तो तब है जबकि हम शरीर को संग में लेकर संसार का बंधन तोड़ना चाहते हैं, जो संभव नहीं है। और शरीर से तादात्म्य-काल में अनंत परमात्मा से अभिन्न होना चाहते हैं जो सर्वथा असंभव है।

सत्यदर्शी संत ने इस दुविधा को मिटाया, "मैं" का "पर" से पार्थक्य कराया, साधक के जीवन का सुन्दर चित्र दर्शाया:-

(क) शरीर विश्व के काम आ जाय - यह है 'सेवा'

(ख) अहम् अभिमान शून्य हो जाय - यह है 'त्याग'

(ग) हृदय प्रभु की प्रीति से परिपूर्ण हो जाय - यह है 'प्रेम'

अर्थात् सेवा, त्याग, प्रेम में ही मानवजीवन की परिपूर्णता है, मानव-जीवन की लौकिक, पारलौकिक सभी समस्याओं का समाधान है।

बड़ा ही पुनीत संयोग है मानव जीवन पाकर अपने कल्याण एवं सुन्दर समाज के निर्माण का।

- देवकी माताजी

❖❖❖

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'

(66)

- प्रो. देवकीजी

(१)

बालक (श्री महाराजजी) जब तीन वर्ष का था, तो एक दिन किसी रमते योगी ने उसके द्वार पर अलख जगायी, और बालक जब माता के हाथ से आटे की कटोरी छीन कर 'हूँ दूँगो भिच्छा'-कहता हुआ योगी की ओर दौड़ा, तो योगी बालक की बड़ी-बड़ी आँखों से आकर्षित होकर उसके ललाट को एकटक निहारने लगा। भिक्षा लेना भूलकर बालक को उस तरह घूरते देख माँ के मन में संदेह तथा भय-मिश्रित भाव उत्पन्न हुआ और आगे बढ़कर उसने बालक को अपनी बाँहों के घेरे में लेते हुए योगी की दृष्टि से हटा लिया तथा हाथ से आटे की कटोरी लेकर योगी की झोली में भिक्षा डाल दी। 'तेरे लल्ला को हाथ देखनो चाहूँ हूँ, मैया! जु कहै तो देख लऊँ।' योगी ने माता से आज्ञा माँगी और सकुचाती हुई माता ने बच्चे की दाहिनी हथेली फैलाते हुए योगी के आगे कर दी। माता गौर वर्ण की थी और बच्चा साँवले रंग का। तभी योगी के मुँह से निकला, 'तौ जि बात है! जसोदा ने कारो जायो है!' बात चाहे जिस उद्देश्य से कही गयी हो, माता ने उसे व्यंग्यात्मक भाव में ही लिया। इधर योगी बच्चे की मुलायम और गुलगुली हथेली को अपने अंगूठे से इधर-उधर खींचता हुआ देख-देखकर मुस्करा रहा था और उधर माता बालक का भविष्य जान लेने को उतावली हो रही थी। माता को बात अच्छी तो नहीं लगी, फिर भी झुककर उसने योगी को दण्डवत् प्रणाम किया और विनयपूर्वक बोली-

"कोऊ अच्छौ वरदान देते जइयो महाराज, मेरे छोरा को।"

तो योगी यह कहता हुआ लम्बे डग भरकर कि–

“तेरो लाला कै तो बड़ो राजा होगो, नहीं तो सिद्ध जोगी तो होगो ही, या में तो कोऊ संदेह नाय। विधि के विधान कूँ को टार सक्यो है, मैया? रामऊँ को बन जानों पड़्यो हतो, मेरी-तेरी तो बात ही कहा है।” लम्बे डग भरता हुआ योगी गाता जा रहा था–

“मुनि वशिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोधि कै लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को बन में विपति परी।”

(२)

बचपन की बात है। प्रीति के लिए ही जैसे बना हुआ हृदय, मैत्री-भाव छलकता रहता, तेज हवा चलती, बगीचों में पके आम टपकते। मुहल्ले के बच्चों के साथ यह अनुरागी-हृदय बालक भी आम खाने के लिए दौड़ जाता। “आम उठाया, एक बार चूसा, रस अगर मीठा लगा तो झटपट दोस्त की याद आ गयी —— अरे, यह तो बढ़िया आम उसको खिलाऊँगा।” देखा आपने! आम खाने का सुख प्यारे मित्र को आम खिलाने के रस में बदल गया! कैसी अद्‌भुत रचना है! कैसा प्रेमी हृदय है! मनोविज्ञानवेत्ता कहते हैं कि बाल्यकाल में व्यक्ति आत्म-केन्द्रित होता है, अपना ही सुख पसंद करता है। आगे चलकर सामाजिकता के प्रभाव से सुख बाँटना सीखता है। यह लक्षण उस बालक पर लागू नहीं होता, जो भोग और मोक्ष——सब कुछ उस अनन्त पर न्यौछावर करके उसको आनन्दित करने वाला, उसका नित्य सखा होने जा रहा है। परमात्मा का अभिन्न मित्र होकर उसने डंके की चोट प्रेम-पथ के साधकों को सुनाया कि **परमात्मा को रस देने के लिए उसको प्यार करो।**

(३)

‘शरीर विश्व के काम आ जाये’, इस सत्य को सिद्धान्त रूप में

प्रस्तुत व प्रतिपादित किया गया बहुत पीछे, परन्तु बीज रूप में यह सर्वहितकारी भाव उनमें विद्यमान था जन्म से ही। बचपन से ही इसके लक्षण प्रकट होने लगे थे उनमें। उन्हीं के श्रीमुख से हमने सुना है, ''मुझे दूसरों के काम आने का बचपन से ही बड़ा शौक रहा है। जब चिट्‌ठीरसा गाँव में आता तो मैं उसके पीछे-पीछे डोलता था, क्योंकि गाँव में अधिक लोग निरक्षर भट्‌टाचार्य थे। मैं ही थोड़ा-सा पढ़ा-लिखा था। जब लोग कहते कि लल्ला, जरा पढ़कर सुना देना, तो बड़ा मजा आता लल्ला को।'' कैसी लगन है! कोई मदद की आवश्यकता अनुभव करेगा, इसलिए स्वयं पहले ही वहाँ उपस्थित हो जाने में, ऐसा मजा लेने में कितना सयानापन है। दूसरों के काम आने वाली लगन जो सीमित सामर्थ्य के बालक में अंकुरित हुई थी वह त्रिगुणातीत ब्रह्मनिष्ठ संत हो जाने के बाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची और निकटवर्तियों ने शरीर-नाश के अंतिम क्षणों में सर्वात्म-भाव से भावित उस महामानव को अपने परम सुहृद् से सबका कल्याण करने के लिए कहते हुए सुना।

(४)

'योगः कर्मसु कौशलम्', यह लक्षण भी बाल्यकाल में ही प्रकट होने लगा था। श्री महाराजजी ने स्वयं ही सुनाया था कि - ''मुझे पढ़ने जाने का बड़ा शौक था। पिता के घर से कुछ दूर दूसरे गाँव में पढ़ने जाता था और लालटेन की रोशनी में चलने का भी बहुत शौक था। अतः स्कूल से आते समय खेलकूद में, जान-बूझकर थोड़ी देर कर देता और लालटेन जलाकर हाथ में लेकर थोड़ा अंधेरा होने पर घर आता। एक दिन घर पहुँचने पर पता चला कि लालटेन की ढ़िबरी रास्ते में कहीं गिर गई है। इससे मुझे बड़ी तकलीफ हुई। दूसरे दिन रविवार था। स्कूल नहीं जाना था। इस कारण उस दिन भी बड़ी बेचैनी रही। मेरे द्वारा ऐसी भूल क्यों हुई? भूल की तकलीफ मिटाने के लिए लालटेन की ढ़िबरी को खोजना था।

सारा दिन, सारी रात बेचैन रहने के बाद सोमवार के दिन जब घर से स्कूल के लिए चला तो अपने दरवाजे से ही पूरे रास्ते भर आँखें गड़ा-गड़ा कर लालटेन की ढ़िबरी को खोजता हुआ गया। छोटी-सी चीज थी, दो दिन बीत गये थे। रास्ते में पड़ी हुई चीज किसी ने उठा ली होगी। मिलने की आशा तो बहुत कम थी, परन्तु गलती हो जाने की तकलीफ और ढ़िबरी को खोजने का चाव बहुत प्रबल था। चलते-चलते स्कूल पहुँचने से पहले ढ़िबरी मिल गयी और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।" आप सोचिये, लालटेन की ढ़िबरी जैसी मामूली चीज का खो जाना कोई खास बात नहीं थी। अच्छे सम्पन्न परिवार का इकलौता लड़का, एक लालटेन बिना ढ़िबरी की हो गयी तो माता-पिता बालक के लिए दो-चार नयी लालटेनें खरीद सकते थे, परन्तु बालक को अपनी कार्यकुशलता में कमी का बड़ा भारी दुःख था। संत हो जाने पर उसी जीवन में से यह सत्य उद्भासित हुआ कि यदि **एक गिलास जल सही ढंग से पिलाना नहीं आता है तो ध्यान करना नहीं आयेगा।** छोटे-से-छोटा काम करने में भी जो असावधानी करता है वह करने के राग से मुक्त नहीं हो सकता। राग-रहित हुए बिना योगवित् होना संभव नहीं है। उनके प्रेमी मित्र इस बात को खूब अच्छी तरह जानते हैं कि आँखों से देखकर उतनी अच्छी तरह वस्तुओं को हम नहीं सँभाल सकते जितनी अच्छी तरह श्री महाराजजी बिना देखे सँभालते थे।

(५)

अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न बालक की आँखें बड़ी गजब की थीं। एक बार स्कूल इन्सपैक्टर आया। वर्ग-कक्ष में बच्चों से बातें करने लगा। परन्तु रह-रहकर उसकी दृष्टि इस बालक पर अटक जाती थी। आखिर उसके मुँह से निकल ही गया -- 'इस बच्चे की आँखें गजब ढ़ाती हैं।' उन गजब ढ़ाने वाली आँखों ने बालक का साथ बचपन में ही छोड़ दिया। बालक

अत्यन्त दुःखी हो गया। पढ़-लिखकर वकील होने की उसकी कल्पना बिखर गई। अरमानों को गहरी ठेस लगी। सारा परिवार दुःखी हो गया। "अपने दुःख से मैं दुःखी होता था और मुझे रोता हुआ देखकर माता-पिता और बहनें सब रोनी लगतीं। उनको रोते हुए सुनकर मैं और अधिक दुःखी होता — मैं यहाँ तक सोचने लग जाता — हाय! मेरा जन्म लेना कितने लोगों के लिये दुःखदायी हो गया है। मेरा जन्म न होता तो दुःख का यह चक्र न चलता।"

(६)

दृष्टि-हीन हो जाने की अपनी दशा पर स्वयं बालक को इतना दुःख हुआ था कि माता-पिता घबरा उठे। बच्चा बाँस की छड़ी टेकता और टटोल-टटोल कर चलता। सुबह से ही निकल जाता और आबादी से बाहर जाकर अपना समय गुजार देता — जैसे, अब वह घर का सदस्य ही नहीं रह गया था। इसी तरह जाड़ों के एक दिन जब वह घर लौटा तो उसके बदन का गर्म कुरता गायब था। फिर एक दिन बदन पर लिपटी हुई लोई भी नदारद थी। बहुत पूछने पर उसने केवल इतना बताया कि किसी रमैया को सर्दी में ठिठुरते सुनकर उसने लोई उसे दे दी थी, क्योंकि 'उसकी ज़रूरत मुझ से अधिक थी।'

(७)

दस-ग्यारह साल के बालक में यह प्रश्न पैदा हो गया था कि "ऐसा भी क्या कोई सुख होता है जिसमें दुःख न शामिल हो?" एक दिन पिताजी किसी से बातें कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि "ऐसा सुख साधुओं को होता है जिसमें दुःख नहीं रहता।" होनहार, मेधावी, सजग बालक को जीवन की राह मिल गई। उसने निश्चय कर लिया, "आँखों के चले जाने से पढ़ना-लिखना संभव नहीं। और सब दरवाजे तो मेरी लिए बंद हो गये, मैं और कुछ नहीं कर सकता, परन्तु साधु तो हो

सकता हूँ।" उसी बालक ने साधु होकर दुःख-रहित जीवन का आनन्द स्वयं पाया। घोर पराधीनता से उच्चतम जीवन की यात्रा आरम्भ करने वाला परम स्वाधीन हो गया। सर्वात्म-भाव से भावित हृदय उमड़ पड़ा और आज आप उनके सिद्धान्तों एवं साधन-प्रणालियों में प्रत्यक्ष उनके जीवन की इस व्यग्रता को अनुभव कर सकते हैं कि उन्होंने असमर्थ से असमर्थ को भी स्वाधीनतापूर्वक स्वाधीनता के साम्राज्य में पहुँचाने का मार्ग किस प्रकार प्रशस्त किया।

(८)

दिल में धुन लगी है कि साधु कैसे हो जाऊँ। आँखों की ज्योति नष्ट हो जाने से चेहरा कैसा दिखता होगा, इस दुःख के मारे घर से बाहर निकला नहीं जाता था। साधु होने की बात सुनना भी माता-पिता सहन नहीं कर सकते थे। साधुओं से मिलने-जुलने के लिये कैसे जाऊँ? कहाँ जाऊँ? कौन ले जाय? बड़ी भारी बेबसी थी। फिर भी, दूसरों की दया का पात्र होकर जीने की बात सोचना भी बालक सह नहीं सकता था। मिलने-जुलने वाले, सगे-सम्बन्धी, जिस किसी से बातचीत होती, केवल सत्संग की ही चर्चा होती, क्योंकि जीवन में एक ही धुन रह गई थी — साधु कैसे बनूं? एक दिन एक संत आये। दरवाजे पर, चौकी पर उनका आसन लगा। पास ही जमीन पर दुःखी बालक चौकी पकड़कर बैठा था। हित-चिंतकों ने संत को दुःखी बालक का दुःख सुना दिया। संत ने कहा-"भैया! राम-राम कहा करो।" बालक ने कहा-"मेरा राम-नाम में विश्वास नहीं है।" संत ने कहा, "कोई बात नहीं। ईश्वर को तो मानते हो?" बालक ने कहा, "हाँ! ईश्वर को मानता हूँ।" इस पर संत ने कहा "अच्छी बात है, ईश्वर के शरणागत हो जाओ।" संत ने कहा, बालक ने सुना। संत की वाणी जादू का काम कर गई। संत होने के बाद अनेक अवसरों पर श्रीमुख से ऐसा कहते सुना गया है-"प्रभु के शरणागत होने की बात जीवन में ऐसी लग गई कि जबसे सुना, प्रत्येक क्षण शरण्य से

मिलने की धुन तीव्र होती चली गई। रह-रहकर हृदय में हिलोर उठती रहती — शरण्य से कैसे मिलूँ?" सत्य की स्वीकृति से साधना की अभिव्यक्ति होती है — जीवन का यह सत्य बालक में प्रत्यक्ष हुआ। जप, ध्यान, स्मरण कुछ करना नहीं पड़ा, स्वतः होने लगा।

(६)

बालक का हृदय प्रेमी तो था ही। अन्धे हो जाने से प्रिय कुटुम्बी-ज़नों का स्नेह इस बालक के प्रति अधिकाधिक उमड़ने लगता। एक दिन की बात है कि चचेरे भाई, उनकी पत्नी इस बालक के साथ एक ही बिस्तर पर लेटे-लेटे प्यार की बातें कर रहे थे। भाभीजी को देवर के साधु होने की बात याद आ गई। उन्होंने प्रेमभरे गद्‌गद् कण्ठ से कहा "आप साधु हो जायेंगे, तो इस प्यार को कौन निभाएगा?" बालक ने सुना। ज्ञान का प्रकाश, असाधारण बुद्धि में बिजली की तरह कौंध गया। उसने उत्तर दिया-"हम लोग यहाँ लेटे-लेटे प्रेमभरी बातें कर रहे हैं, बड़ा अच्छा लग रहा है। यह अच्छा लगना कब तक रहेगा? अभी थोड़ी देर में हमें नींद सतायेगी और हम सब अलग-अलग होकर सो जायेंगे, फिर यह अच्छी लगने वाली परिस्थिति कहाँ रहेगी?" भाई-भाभी से उत्तर देते नहीं बना। बालक के जीवन में यह सत्य प्रकट हो गया कि **अच्छी लगने वाली परिस्थिति रहती नहीं है। उसका आश्रय लेना असत्य है।**

(१०)

संत की वाणी ने मंत्र का कार्य तो कर ही दिया था। जीवन में साधुता का विकास आरम्भ हो गया था, परन्तु संन्यास लेना बाकी था। राह दिखाने वाले संत आवश्यकतानुसार समय-समय पर आते रहते थे। संन्यासी होने की उत्सुकता को सुनकर उन्होंने आदेश दिया, "माता-पिता के जीवन-काल में तुम उन्हें मत छोड़ो। धीरज रखो, जो तुम्हें छोड़ता जाय,

उसे तुम छोड़ते जाओ।" गुरु के आदेश में अविचल निष्ठा थी। कुछ ही दिनों के भीतर मोह का घेरा डालने वाले कुटुम्बी-जन एक-एक कर दिवंगत होते गए, संन्यास लेने के लिए उत्सुक किशोर सबसे नाता तोड़ता गया। अब एक विकट परिस्थिति सामने आई। परपीड़ा से द्रवित किशोर में एक चिन्तन आरम्भ हुआ-"अम्मा नहीं रहेंगी तो पिताजी दुःखी रहेंगे। पिताजी नहीं रहेंगे तो अम्मा रोयेंगी। मैं अंधा बालक कुछ कर नहीं सकता। अम्मा का दुःख मुझसे कैसे देखा जायेगा? कितना अच्छा होता कि ये दोनों एक साथ चले जाते।" और वही हुआ। माता-पिता दोनों का देहान्त - घंटों के आगे-पीछे हो गया! कैसे हो गया, किसने किया-कौन कहे!

(११)

अब तक १८-१९ वर्ष की उम्र हो गई थी। बड़ी उत्सुकता से गुरु-आगमन की प्रतीक्षा हो रही थी। नाते-रिश्ते, अड़ौसी-पड़ौसी, वृद्ध एवं सम-वयस्क लोगों की ओर से तरह-तरह के सुझाव आने लगे — सम्पत्ति काफी है, बैंक में जमा कर दो और फिर दरवाजे पर बैठकर, चैन से राम-भजन करो। प्रस्ताव सुनकर युवक तिलमिला उठता। बिचारे मोह में पड़े-सने लोग समझ नहीं पाते थे कि जिसने सर्व-सामर्थ्यवान की शरण ली है वह भला संग्रहीत सम्पत्ति के सहारे कैसे बैठ सकता है। उन्हें बड़ा आश्चर्य होता, जब वे युवक के मुँह से ध्रुव-निश्चय की दृढ़ता के साथ यह सुनते-"तुम लोग मुझे सम्पत्ति के अधीन रखना चाहते हो, मैं ऐसा नहीं करूँगा।" भीतर से संन्यास सिद्ध तो हो ही गया था, अब बाहर से संस्कार पूरे करने के दिन आ गये। अन्य संतों-भक्तों की मंडली लेकर सद् गुरुदेव एक दिन पधारे और आदेश दिया, "अब समय आ गया है — घर के दरवाजे सब खोल दो — गाँव के लोग जो चाहें सब उठा ले जायें — तुम मेरे साथ चलो।" ऐसा ही हुआ। शरण्य से मिलने की लगन ने,

संन्यासी होने की तीव्र अभिलाषा ने, लोभ-मोह का अन्त पहले ही कर दिया था। एक क्षण की देर नहीं लगी। गुरु ने जैसा कहा, शिष्य ने वैसा ही किया। निकटवर्ती जनों में स्नेह का भाव उमड़-उमड़ कर आँखों से बहने लगा। युवक ने प्रेम-पूर्वक सबका समाधान किया और गुरु के पीछे चल दिया। उस समय से अन्त तक संन्यास-धर्म का बड़ी दृढ़ता के साथ स्वामीजी ने पालन किया। अन्धे होने के कारण कभी भी संन्यास-धर्म के पालन में कोई कमी नहीं आने दी। संन्यास देने वाले गुरु ने चलते समय कह दिया, 'बेटा! जब तुम आजाद हो जाओगे, तो सारी प्रकृति तुम्हारी सेवा के लिए लालायित रहेगी। चराचर जगत तुम्हारी आवश्यकता-पूर्ति के लिए तत्पर रहेगा। वृक्ष तुम्हें फल-फूल देंगे और खूँखार शेर तुम्हें गोद में लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।'

''जीते जी मर जाय, अमर हो जावे,
दिल देवे सो दिलबर को पावे''

स्वामी जी ने गुरुवाणी को सर्वांश में धारण किया और उसे जीवन में शत-प्रतिशत फलित होते देखा।

(१२)

गुरु के पास बैठे-बैठे एक दिन तेजोमय युवक संन्यासी के मन में उपनिषद् पढ़ने का संकल्प उठा। सद्गुरुदेव ने बिना पूछे ही उत्तर दिया-'ठहरी हुई बुद्धि में सब वेद-शास्त्र, उपनिषदों का ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। पाठशाला है एकान्त और पाठ है मौन।'' प्रश्न का उत्तर मिल गया। संत ने जो कहा, स्वामीजी ने उसे किया और वे प्रज्ञाचक्षु हो गये। 'मैं', 'यह' और 'वह' का प्रत्यक्ष बोध हो गया। फिर तो यह परिणाम हुआ कि उस बेपढ़े-लिखे की बात सुनकर बड़े-बड़े विद्वद्वरेण्य भी चकित होने लगे।

(१३)

रात्रि का समय है। गाँव के बाहर खेत की मेंड़ पर विरही साधु रात्रि-जागरण कर रहा है। रात्रि के निविड़ अंधकार में आस-पास से, दूर-दूर से खेत रखाने वालों की आवाज सुनाई देती है। विरही साधु में प्रिय-मिलन की लौ और तेज होती है-'ये खेत रखाने वाले मुट्ठी भर अन्न के लिए सारी रात जगते हैं। मैं शरण्य से मिलना चाहता हूँ और सोऊँ? विरह की लहर तीव्र हो जाती है। सवेरा होने का आभास पाकर ही विरही संन्यासी नित्य-कर्म के लिए उठ बैठता है।

(१४)

एक परिचित गृहस्थ के यहाँ आज बड़ी भीड़-भाड़ है। नव-विवाहिता ननद ससुराल से पीहर आई है। भाभियाँ दिल्लगी में पूछ रही हैं-"बीबी जी! कैसा लग रहा है?" नवोढ़ा दिल की कसक के साथ कह रही है-"भाभी जी! दिन में अंधेरा-अंधेरा दिख रहा है।" पास ही में बैठे, प्रभु-प्रेम के प्यासे, स्वामीजी भीतर-भीतर तड़प उठे-"प्रेम करना तो ये जानती हैं। प्रिय के बिना इनको दिन में भी अंधेरा दिख रहा है, और एक मैं हूं कि अपने को शरणागत कहता हूँ और शरण्य से मिले बिना चैन से रहता हूँ।" प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा तीव्रतर होती जा रही है।

(१५)

उत्कण्ठा बढ़ती गई। सम्पूर्ण अहं को उत्कण्ठा बनाकर वह शरणागत शरण्य से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। गर्मी के दिन हैं। दो-मंजिले मकान पर छत के ऊपर टिन के शेड के नीचे निर्विघ्न बैठे हैं। प्यास लगी है। पास में जल भी रखा है, परन्तु प्रिय से अभिन्न होने की उत्कण्ठा इतनी तीव्र है कि जल पिया नहीं जाता। 'नहीं! सत्य मिले पहले, जल पीऊँ, पीछे। यदि जल पीते ही पीते प्राण-पखेरू उड़ गये तो!' फिर क्या

था। **माँग की जागृति में ही माँग की पूर्ति निहित है, यह सत्य जीवन में प्रत्यक्ष हो गया।**

(१६)

गुरु के शरीर के शांत होने का समय आया। स्वामीजी महाराज ने गुरु से कहा - ''आपका शरीर कुछ काल और रह जाता तो मेरी साधना के लिए अच्छा रहता।'' यह सुनकर श्री सद्‌गुरुदेव ने उत्तर दिया कि ''ऐसा क्यों सोचते हो? मेरे अनेक शरीर हैं, तुम्हें जब आवश्यकता होगी मैं मिल जाऊँगा।'' सद्‌गुरु के सद्‌शिष्य ने गुरु-वाणी को गाँठ बाँध लिया, उसके बाद अनेक बार का अनुभव उन्होंने निज श्रीमुख से हमें सुनाया है कि साधन की दृष्टि से जब-जब स्वामीजी के दिल में कोई प्रश्न उठता, तत्काल कोई न कोई संत मिल जाते और समाधान कर जाते। श्री महाराजजी को यह पक्का अनुभव हो गया कि उनके सद्‌गुरु के अनेक शरीर हैं और किसी-न-किसी रूप में वे मार्ग-दर्शन कर देते हैं। इतना निश्चय होते ही श्री स्वामीजी महाराज निश्चिन्त हो गये। एक समय एक समस्या को लेकर गंगाजी के तट पर अकेले बैठे थे। गुरुदेव की याद आई। श्री स्वामीजी ने तुरंत सोच लिया कि जब अनेक शरीर गुरुदेव के हैं तो यह एक शरीर भी तो उन्हीं का है। किसी भी शरीर के माध्यम से जब वे मार्ग दिखा सकते हैं, तो यह शरीर भी तो उनका ही अपना है। इसके माध्यम से भी वे मेरी मदद कर सकते हैं। इतनी बात ध्यान में आने भर की देर थी कि समस्या हल होने में देर नहीं लगी। फिर तो गुरु-तत्व को अपने ही में विद्यमान जानकर बाह्य गुरु की आवश्यकता को ही उन्होंने समाप्त कर दिया। शरीर के लिये संसार का आश्रय तो वे पहले ही छोड़ चुके थे, अब गुरु-तत्व को स्वयं में ही विद्यमान जानकर इस दिशा में भी वे सर्वथा स्वाधीन हो गये। भीतर-बाहर परमानन्द छा गया।

(१७)

एक बार श्री स्वामीजी महाराज का शरीर अस्वस्थ हो गया। उत्तरापथ की यात्रा करके वापस आये थे। 'हिल-डायरिया' से शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया। साथ-साथ ज्वर भी रहने लगा। करीब ४० दिन हो गये थे बीमार पड़े। चिकित्सकों के मतानुसार नाड़ी की गति शरीर के नाश का संकेत दे रही थी। मित्रों, प्रेमियों एवं चिकित्सकों ने चिन्ता प्रकट की। श्री स्वामीजी महाराज के शरीर को नियमानुसार कुशा, मृगछाला इत्यादि बिछाकर जमीन पर उतार लिया गया। चारों ओर प्रिय-जन खड़े थे। एक परिचित प्रेमी डॉक्टर ने कहा-"बाबाजी चले।" श्री स्वामीजी महाराज ने सुना। प्रियजनों के उमड़ते हुये हृदय के स्पन्दन को अनुभव किया। त्रिगुणातीत पुरुष को बड़ा भारी कौतुहल हुआ कि प्रियजन क्यों इतने दुःखी हैं? "अब मैं देखता हूँ कि मृत्यु कैसी होती है। जब मैं देखने लगा तो मुझे बड़ा आनन्द आया। शरीर के छूट जाने में इतना हल्कापन और इतना आनन्द था कि जिसकी कोई सीमा नहीं। **मैंने सोचा कि मृत्यु में कोई दुःख नहीं है, बड़ा आनन्द है। चूंकि आदमी जीना चाहता है, इसलिए मरने में दुःखी और भयभीत होता है, अन्यथा आनन्द ही आनन्द है।** मेरा आनन्द मृतकवत् शरीर पर भी फैल गया था। मैं सुन रहा था-मित्र लोग कह रहे हैं कि देखो, बाबा कितने प्रसन्न हैं।"

(१८)

देश में स्वातंत्र्य-आन्दोलन चल रहा था। महात्मा गाँधी के निर्देशन पर सारे देश में विदेशी सरकार के साथ असहयोग एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की धूम मची थी। सरकार के द्वारा दमन का चक्र चल रहा था और गुलामी की घुटन में से नित नये आजादी के दीवाने प्रकट हो होकर जन्मसिद्ध स्वराज्य पाने के लिए हँसते-हँसते फाँसी की तख्ती चूम रहे थे। श्री स्वामीजी महाराज जैसा सर्वांश-परिपूर्ण व्यक्तित्व वाला निर्भीक, दिलदार,

उत्साही भला देश की सेवा की लहर से अछूता कैसे रह जाता? वे कूद पड़े स्वातंत्र्य-आन्दोलन की लहर में। भाषणों के द्वारा स्वाधीनता के प्रति जन-जागरण की सेवा, विदेशी कपड़ों की दुकान पर 'पिकेटिंग' करना, जेल जाना-सब कुछ किया। बाल-मुड़ाये हुए चिकने-चिकने सिर पर पुलिस की लाठी खाने में बड़ा मजा आयेगा — इस उत्साह से भरकर पिकेटिंग में व्यस्त नेत्रहीन युवक-संन्यासी को देखकर बेजान लोगों में भी जान आ जाती थी। एक दिन स्वामीजी महाराज के गुरूदेव के मित्र एक संत महापुरूष ने इनको बड़े जोर-शोर से स्वराज्य के आन्दोलन में लगा हुआ देखकर इनके पास आकर बड़े प्यार से पूछा — 'बेटा, क्या तुमने इसीलिए घर छोड़ा था?' स्वामीजी महाराज ने बड़ी दृढ़ता के साथ स्पष्ट उत्तर दिया — 'बिलकुल नहीं। देश की सेवा के राग को मैं विचार से नहीं मिटा सका। इसलिए इस कार्य में लग गया हूँ।'

पुनः उक्त संत महापुरुष ने पूछा-'तुम्हारा हाल क्या है?' स्वामीजी ने उत्तर दिया-'मैं सर्व-काल में अपनी अखण्ड शान्ति में विराजमान हूँ, मैं करता-कराता कुछ नहीं हूँ।' यह उत्तर सुनकर वे संत बहुत प्रसन्न हुए। बड़े प्यार से स्वामीजी महाराज की पीठ थपथपाई और यह कहकर चले गये कि 'खूब सेवा करो।'

(१६)

एक बार मथुरा से आगरा जाते समय मैं (श्री स्वामीजी महाराज) यमुना के किनारे-किनारे जा रहा था। एक स्थान पर ढाह गिरी और मैं पानी में जा पड़ा। नदी चढ़ी हुई थी। हाथ की लाठी भी छूट गयी थी। दिखाई देता नहीं था कि किधर को तैरें। भगवान के भरोसे शरीर को ढीला छोड़ दिया। लगा जैसे किसी ने हाथ पकड़कर खुश्की पर डाल दिया। उठने को हाथ धरती पर टेका तो (पहली वाली नहीं) एक दूसरी लाठी हाथ में आ गई थी।

गीता में कथित भगवत्‌वाणी श्री महाराजजी के लिए प्रत्यक्ष हो गई-"जो लोग अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मेरे चरणों के नित्य आश्रित हैं, उन जीवों के योग-क्षेम का मैं वहन करता हूँ।" गीता में जो कहा था श्री महाराजजी के साथ वह करके दिखा दिया। **शरण्य ओर शरणागत की जगत्‌पावनी मधुमयी लीला धन्य है।**

(२०)

साधुशाही रहनी थी। गाँव के किनारे शाम के समय किसी स्थान पर ठहरना था। विवेक-विरोधी वातावरण देख श्री स्वामीजी महाराज वहाँ से रात्रि में ही चल दिये। सारी रात चलते रहे। शरीर बहुत थक गया था। नौका से पार होते समय मल्लाह ने भजन गाया, जिसका आशय यह था कि श्याम का दास हो गया बेदाम का। भजन सुनकर स्वामीजी के हृदय में प्रीति का भाव उमड़ पड़ा। उसी मस्ती में नदी के पार उतर कर अकेले ही चल पड़े। नदी का कछार कँटीला था, जमीन दलदल थी, किसी से रास्ता पूछने का उनका नियम नहीं था। स्वयं रास्ता बताने वाला कोई राही वहाँ नहीं था। बिना देखे, बिना जाने, थका-माँदा शरीर और विरह से उमड़ता हुआ हृदय। श्री स्वामीजी महाराज जिधर ही कदम रखें, पैर काँटों और दलदल में फँस जाय। शरणागत की रक्षा में उपस्थित होने का अवसर शरण्य को मिला। एक व्यक्ति आया और कहने लगा कि 'बाबा! अमुक गाँव को जा रहे हो क्या? मुझे भी वहीं जाना है। चलो मेरे साथ और देखो भाई, मैं बहुत थका हुआ हूँ, धीरे-धीरे चलूँगा।' ऐसा कहकर वे श्री स्वामीजी महाराज को काँटा-कुशा बचाकर ठीक रास्ते से निकालकर लिवा गये। जब गाँव नजदीक आ गया और पक्की सड़क आ गयी तो यह कह करके गायब हो गये कि मुझे यहाँ से दूसरी तरफ जाना है। श्री स्वामीजी महाराज को उनका आत्मीय व्यवहार एवं कुसमय में उनका सहारा प्रेम-भाव को अति तीव्र करने वाला मालूम हुआ। विरह आँखों से छलकने लगा। हृदय में प्रतिध्वनि होने लगी — हे मेरे प्यारे, कितना ध्यान

रखते हो! बिना बुलाये आ गये! जिधर मुझे जाना था उधर के ही राही बने! और प्यारे, जैसी मेरी थकी हुई दशा थी जिसमें मैं खुद ही जल्दी-जल्दी नहीं चल सकता था, वैसी ही थकी हुई दशा अपनी बनाकर धीरे-धीरे मुझे चलाकर गाँव तक पहुँचा दिया! **तुम्हारी महिमा अपरम्पार है।**

(२१)

प्रेम-रस में डूबे, फिर भी बाह्य दृष्टि से बड़े ही सजग, निर्भीकता-पूर्वक रास्ते चलते हुए बाबा से किसी ग्रामीण व्रजवासी ने बड़े प्यार से पूछा--बाबा! लाला-लाली के प्रति आपका क्या भाव है? स्वामीजी ने उत्तर दिया--भैया, मैं तो प्रिया-प्रियतम की फुटबाल हूँ। वे चाहे जिधर ठुकरा दें उधर चला जाता हूँ। इसमें बड़ा रस है। दोनों की दृष्टि मुझ पर लगी रहती है। प्रियतम प्रिया की ओर फेंकते हैं और प्रिया प्रियतम की ओर फेंकती हैं, दोनों के चरण-स्पर्श के आनन्द में आनन्दित रहता हूँ। मेरा अपने में अपना कुछ नहीं है। अनुपम खिलाड़ी के हाथ का खिलौना हूँ। वे दोनों मुझे बहुत प्यार करते हैं।

किसी महापुरुष की जीवनी इसलिए लिखी जाती है कि पाठकगण उससे प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को उन्नत बनाने में उसका उपयोग कर सकें। इस दृष्टि से श्री स्वामीजी महाराज की जीवनी लिखने का संकल्प परिचित मित्रों के मन में बार-बार उठता रहा है। परन्तु श्री स्वामीजी महाराज ने इस बात को कभी भी पसन्द नहीं किया कि उनकी जीवन-गाथा लिखी जाय। एक आदर्श शरणागत संत के रूप में उन्होंने परमात्मा की ही महिमा को धारण करना एवं प्रकाशित करना पसन्द किया। उन्होंने ज्ञान और प्रेम को ही दिव्य-चिन्मय तत्त्व के रूप में प्रगट करना पसन्द किया। अपने सीमित अहम् के लेश-मात्र का भी उल्लेख उन्हें प्रिय नहीं था। उनकी अमर वाणी है-

१ मेरा कुछ नहीं है,
२ मुझे कुछ नहीं चाहिए,
३ मैं कुछ नहीं हूँ

यह शाश्वत सत्य उनका कथन भी है और जीवन भी। एक बार किसी ने कहा था — स्वामीजी महाराज, आपका परिचय जानना चाहता हूँ। श्री महाराजजी ने उत्तर दिया--**'शरीर सदैव मृत्यु में रहता है और मैं सदैव अमरत्व में रहता हूँ, यही मेरा परिचय है।'**

**(मानव सेवा संघ - रजत जयंति स्मारिका
वर्ष १६७७ से साभार)**

❖❖❖

स्वामी शरणानन्द

(एक परिचय)

(67)

जिन अपरिमेय परम करुणामय सन्त (स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज) की करुणामयी गोद में बाल्यकाल के पाँच वर्ष से लेकर बाईस वर्ष तक की आयु निश्चिन्तता, निर्भयता एवं आनन्द के साथ बितायी, भला उनकी उस गोद के मधुर आनन्द को कौन छोड़ना चाहेगा? लेकिन क्रूर काल हमारे उस आनन्द को सह न सका। उसने उनकी गोद से हमें झटक कर एक ओर पटक दिया। उनके सान्निध्य में एक ओर वात्सल्यमयी स्नेह मूर्ति मां का वात्सल्यमय प्रेम छलक रहा था तो दूसरी ओर पिता सदृश न्याय, संरक्षण एवं गुरुवत् मार्ग-दर्शन। पता नहीं प्रारब्ध के किन कर्मों के फल से या प्रभु की अहैतुकी कृपा से मुझे ऐसे उच्च कोटि के सन्त का वात्सल्य भरा प्यार, संरक्षण एवं मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। उनके निकट बैठने मात्र से ही दुःखित, पीड़ित, क्षुभित, थकित, क्लान्तमना व्यक्ति को बड़ी ही शान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता। उनके स्पर्श मात्र से रोम-रोम सिहर जाता। उनकी ओजमयी एवं प्रेरणादायी वाणी हृद-तन्त्री को झंकृत कर देती। उनके अथाह प्रेमरूपी सागर की लहरियों के आनन्द में सभी प्राणी निमग्न रहते। उस अथाह प्रेम-सागर ने दुःखियों की वेदना के आँसुओं को अपनी उदारता की गहरायी में समाहित कर पीड़ा से दग्ध हृदय को शीतलता एवं शान्ति प्रदान की। विधाता की करुणा एवं प्रसन्नता का मूर्तिमान रूप था वह महामानव। उनका एक-एक अणु-परमाणु मानो प्रेम की धातु से निर्मित था, क्योंकि उनके जीवन में करुणा, प्रसन्नता एवं प्रेम के सिवाय कुछ था ही नहीं। **ईसा का प्रेम, बुद्ध की करुणा,**

मुहम्मद की मैत्री इन तीनों के संगम का जिसने अनुभव किया हो वही जान सकता है उस अनिर्वचनीय आनन्द को। वह तो गूँगे के स्वाद सदृश है।

उनमें ईश्वरीय विभूतियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। उनके प्रेम-रस की मधुरता ईश्वरीय मधुरता के समान आकर्षक थी। उनमें इतनी अलौकिक शक्तियाँ थीं जो ईश्वरीय ऐश्वर्य का ही अंश थीं। भगवती सरस्वती ने वाणी रूप में उनकी वाक्शक्ति बनकर अपने को धन्य माना। अपनी इच्छानुसार शरीर-त्याग की तिथि निर्धारित करना उनके ऐश्वर्य का ही उदाहरण है। सन्त-महापुरुष प्राप्त सिद्धियों एवं शक्तियों को प्रकट करना अपनी साधना में बाधा मानते हैं। इसी हेतु उन्होंने प्राप्त सिद्धि, शक्ति एवं महत्ता को कभी दूसरों के सामने प्रगट नहीं किया। लेकिन क्या कभी सूर्य का प्रकाश धूमिल हो सकता है? ऐसे ही महापुरूषों का तेज क्या कभी छिपा रह सकता है?

उनका व्यक्तित्व असाधारण था। सांसारिक दृष्टि से शरीर संसार में रहता, किन्तु वे स्वयं अमरत्व में ही निवास करते। मौज आने पर कभी कह भी देते - "शरीर मृत्यु में रहता है और मैं अमरत्व में नित्यवास करता हूँ।" ऐसे अमरपुरी के वासी का अपने आराध्य प्रियतम से सम्बन्ध ा कितना विलक्षण था। वे कहते, "भैया, मैं तो प्रिया-प्रियतम की फुटबाल हूँ। वे चाहे जिधर ठुकरा दें, उधर चला जाता हूँ, इसमें बड़ा रस है, दोनों की दृष्टि मुझ पर लगी रहती है।" ऐसा अहम्-शून्य व्यक्तित्व था। उनका सम्पूर्ण अहम् गलकर प्रेम की धातु में बदल गया था, उस प्रीति की गंगा में गोते लगाकर। जब भक्त अपने प्यारे की मधुर स्मृति में आपा खोकर सब कुछ भूल बैठता है, प्रिय की अखण्ड स्मृति में ही डूबा रहता है तब भगवान को ही अपने प्रेमी-भक्त का स्मरण करना पड़ता है। सन्त मलूकदास की तरह सन्त शरणानन्द की भी यही दशा थी-

माला जपौं न कर जपौं जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पायो विसराम।।

उनका आन्तरिक व्यक्तित्व जितना कोमल, निर्मल एवं महान् था, बाह्य भी उतना ही आकर्षक था। लम्बा कद, सुड़ौल शरीर, उन्नत ललाट, गले में रुद्राक्ष की माला, श्वेत दाढ़ी, श्वेत घुंघराले बाल, दिव्य ज्ञान के प्रकाश से देदीप्यमान मुख उनके ऋषि व्यक्तित्व को दर्शाता था। प्रकृति के विधान से बाल्यकाल में ही बालक के ऊँचे-ऊँचे अरमान चूर हो गये। किन्तु नहीं, विधाता ने उस प्रतिभाशाली बालक की रचना अपने प्रेम और मानवता का सन्देश देने के लिए की थी। अतः दुःखहारी प्रभु ही दुःख रूप में आकर बालक को अपना अभिन्न मित्र बना कर स्वयं ही प्रेम और मानवता का शंखनाद कर गये। उन्होंने स्वयं ही दुःख की महिमा गाते हुए कहा - "दुःख से मुझे सब कुछ मिला है, जब-जब दुःख की महिमा पर विचार करता हूँ तब-तब ऐसा ही मालूम होता है कि प्यारे दुःख ने ही मुझे दुःखहारी से मिलाया है। दुःख के प्रभाव ने मुझे सुख की दासता से मुक्त किया है।" उन सन्त-भगवन्त ने चम्बल नदी के तट पर एकान्त गुफा में अनेक वर्ष साधना एवं तपस्या की। जीवन-मन्थन के फलस्वरूप जो अमृत मिला उसे समग्र सृष्टि हेतु दान कर गये, जिस अमृत को पानकर मानव युगों-युगों तक अमरत्व के पथ पर अग्रसर होता रहेगा।

उनकी अमृतमयी वाणी से अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। उनकी वाणी खड़ी बोली हिन्दी होते हुए भी विद्वद्वरेण्य के लिए उनके भावों एवं अनुभव सिद्ध भाषा को समझना कठिन हो रहा है, **क्योंकि सन्तों की अनुभूत-भाषा की गूढ़ता को जीवन की पाटी पर अंकित कर अनुभूति के नेत्रों से ही पढ़ा जा सकता है।** सन्त तो अनुभव-सिद्ध बात ही कहते हैं। उन्हें साहित्य की रचना के लिए ग्रन्थों से सामग्री जुटाने की आवश्यकता नहीं होती और न ही उनको अनुभूत सत्य को प्रगट करने के लिए किसी प्रमाण की ही आवश्यकता होती है। स्वामी जी महाराज बाल्यकाल में ही प्रज्ञा-चक्षु हो

जाने से वेद-शास्त्रों के अध्ययन से अछूते ही रहे। गुरु-वाक्य पर विश्वास कर उन्होंने स्वानुभूति द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि **"ठहरी हुई बुद्धि में सब वेदशास्त्र, उपनिषदों का ज्ञान स्वतः प्रकट होता है, उसकी पाठशाला है एकांत और पाठ है मौन।"**

भाषा भावों की अनुगामिनी होती हैं। सन्तों का अनुभूत सत्य स्वतः ही भाषा-बद्ध हो जाता है। स्वामी जी महाराज के साहित्य का स्फुरण स्वानुभूति और पर-पीड़ा या करुणा से हुआ। घोर पराधीनता एवं असमर्थता में होते हुए भी, स्वाधीन जीवन एवं सत्य को पाने की जिज्ञासा एवं वेदना से उन्होंने स्वाधीन जीवन एवं सत्य को पा लिया। जिस मानव ने अमरत्व पा लिया वह भला अशांति एवं पराधीनता में फंसे मानव को कैसे देख सकता है? नवनीत से भी कोमल सन्त-हृदय व्यथित हो उठा। समय-समय पर वे कहते भी थे- "जिसको दर्द होता है वह चिल्लाता है, चुप नहीं रह सकता, मैं कथा नहीं सुनाता हूँ, अपनी व्यथा सुनाता हूँ।" मानव जीवन पाकर भी व्यक्ति असफल रह जाय! चिरशांति, जीवन मुक्ति, भगवद् भक्ति प्राप्त करने का जिसको जन्मसिद्ध अधिकार है, वह मानव उससे वंचित रह जाय, यही उनकी व्यथा थी। अतः ज्ञान एवं आनन्द में लीन, अपनी ही मस्ती में मस्त, फक्कड़ एवं अवधूत जीवन व्यतीत करने वाले सन्त को विवश होकर अपनी व्यथा को साकार रूप देना पड़ा। उनकी व्यथा का ही साकार रूप है — मानव-सेवा-संघ और इसी नाम से उन्होंने साहित्य-सर्जना की।

वे एक जागरूक साहित्यकार की श्रेणी में आते हैं। सद्साहित्य और कला की कसौटी अनुभूति की सच्चाई है। वे इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। उन्होंने 'कागद लेखी' नहीं, 'आँखिन देखी' लिखा। वे विद्यालय की शिक्षा से वंचित रहे किन्तु अनुभूति की तीव्रता के कारण भाषा भाव-वाहिनी बन गयी। अवधूत सन्त की भाषा किसी भी विचार को व्यक्त करने में पंगु नहीं हुई। स्वानुभूति के बल पर उन्हें जो विश्वसनीय लगा उसे ही बिना

किसी लाग-लपेट, आडम्बर और कृत्रिमता के उन्होंने सरलता, निश्छलता, मार्मिकता एवं आत्म विश्वास के साथ अभिव्यक्त किया। उन्होंने सर्वात्म-भाव से प्रेरित होकर ही साहित्य-सर्जना की। मानव-सेवा-संघ के प्रणेता सन्त के साहित्य में व्यक्ति और समाज की एकता एवं सर्वात्मभाव को स्पष्ट करते हुए बताया है कि — "अनेकता का उद्गम एक है और अनेकता अन्त में एक ही में विलीन होती है। अतः एक और अनेक का स्वरूप से विभाजन नहीं। पारस्परिक विकास में सहयोग देने के लिए ही व्यक्ति और समाज की भिन्नता और एकता है।"

"सामाजिक भावना का वास्तविक अर्थ है — सर्वात्मभाव। इससे पूर्व सामाजिकता की चर्चा समाज को अपनी खुराक बनाना है। सामाजिक भावना व्यक्ति को समाज की खाद बनाती है। खाद उससे अभिन्न हो जाती है जिसकी वह खाद होती है। सामाजिक भावना से युक्त मानव अपने को विभु पाता है।"

साहित्यकार निर्लिप्त एवं अनासक्त होकर जिस सत्य की प्रतिष्ठा करता है, उसकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही समस्त पूर्वाग्रहों से रहित होने पर ही साहित्य अपने नाम को सार्थक कर सकता है। मानव-सेवा-संघ प्रणेता सन्त का व्यक्तित्व ऐसा निर्लिप्त एवं अनासक्त था कि उन्होंने प्रातिभ-ज्ञान द्वारा निःसृत सार्वभौम सत्य पर नाम की सील नहीं लगायी। ऐसा निर्लिप्त व्यक्तित्व कोई बिरला ही होगा।

प्रत्येक युग में ऐसे चिन्तकों, मनीषियों का उदय होता है जो अपने कृतित्व द्वारा समाज की विषमता एवं वैमनस्य को समाप्त करके समाज में एकता, प्रेम और मानवता की भावना को जाग्रत कर मानव को उसकी महिमा से अवगत कराकर उसे अविनाशी जीवन प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। यह कार्य उत्कृष्ट साहित्य सदियों से करता आया है। मानव-सेवा-संघ-साहित्य में भी स्वामी शरणानन्द जी महाराज ने सहज

समाधि, अहम् समर्पण, शरणागति, प्रेम, मानवता, सामाजिक क्रांति आदि पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन्होंने सत्य के उस वृहद् रूप को उजागर किया है जो रूढ़िमुक्त है, किन्तु निषेधवादी नहीं। वे एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहाँ से सभी पथ के पथिकों को राह मिल रही है। अध्यात्मवादी आत्मचिन्तन में निमग्न है तो आस्तिकवादी का ईश्वर विश्वास ही सम्बल है एवं भौतिकवादी कर्तव्यपथ पर दृढ़ है। उन्होंने हर क्षेत्र के पथिकों को सत्य की राह बतायी। सत्य को पाने का अधिकार मानव-मात्र को है। इसीलिए उन्होंने निराशा को जीवन में स्थान नहीं दिया। बस, माँग की जागृति को ही माँग की पूर्ति में हेतु बताया। उन्होंने सभी पथों का तारतम्य एवं समन्वय कितने सुन्दर ढंग से किया है-**"भौतिकता की पूर्णता में आध्यात्मिकता एवं आध्यात्मिकता की पूर्णता में परम-प्रेम स्वतः अभिव्यक्त होता है। कर्तव्यनिष्ठ जगत के लिए और विवेकी अपने लिए एवं विश्वासी प्रभु के लिए उपयोगी होता है, यह मानव जीवन की विलक्षणता है।"**

साधन भेद होने पर भी प्रीति भेद तथा साध्य भेद के लिए साधक के जीवन में कोई स्थान नहीं है। साधना का आरम्भ चाहे जिस पद्धति के अनुसार हो, परन्तु अन्त में सभी एक होकर उस साध्य से अभिन्न हो जाते हैं, जो वास्तविक जीवन है।

मानव सेवा संघ के प्रणेता सन्त ने मानव-मात्र के लिए उपयोगी एवं सभी के लिए समानरूप से कारगर हो, ऐसी जीवन-पद्धति का अनूठा एवं अभिनव प्रयोग किया, जो उनके जीवन-मंथन से उद्भुत हुई। उस अनुपम खोज की अभिव्यक्ति हेतु उन्होंने नवीन शब्द भी गढ़े। वह खोज है- "मूक सत्संग और नित्य योग"। **मूक-सत्संग का अर्थ है, श्रम-रहित होकर सत् का संग करना और नित्य-योग का अर्थ है - अविनाशी से मिलन।** मूक-सत्संग की पूर्णता में ही नित्य-योग की प्राप्ति है। नित्य-योग की प्राप्ति में प्रत्येक व्यक्ति अपनी राह पा ले, इस हेतु उन्होंने विचार, विश्वास और

कर्त्तव्य अर्थात् अध्यात्मवाद, आस्तिकवाद एवं भौतिकवाद — सभी दृष्टि से नित्य-योग की प्राप्ति का उपाय बताया।

मूक-सत्संग कोई अभ्यास नहीं है, न ही सार्थक चिंतन द्वारा व्यर्थ-चिंतन को मिटाना है और न ही निर्विकल्प अवस्था मूक-सत्संग है, अपितु अहंकृति रहित होकर सभी अवस्थाओं से असंग होना मूक-सत्संग है। अर्थात् अहम्-शून्य होकर सब कुछ को कुछनहीं में विलीन कर देना मूक-सत्संग है। 'कुछ न करने में जीवन है'-इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्ति को श्रम एवं प्रवृत्ति से रहित किया जा रहा है, अपितु प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही जीवन के दो पहलू हैं। **सही प्रवृत्ति के बाद सहज निवृत्ति आती है, यह सहज निवृत्ति ही मूक-सत्संग है।** संघ की भाषा में –**"मूक-सत्संग अभ्यास नहीं है अपितु श्रम-रहित स्वाभाविक साधन है। कर्त्तव्य-परायणता, अचाह और शरणागति भाव से ही मूक-सत्संग की सिद्धि होती है।"** मूक-सत्संग द्वारा मनुष्य का क्रमिक विकास होता है, उसे बड़े ही सुन्दर रूपक में प्रस्तुत किया गया है-**"अचाह रूपी भूमि में ही मूक-सत्संग रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है और सम्बन्ध-विच्छेद रूपी जल से उसे सींचा जाता है। वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग ही उस वृक्ष की रक्षा करने वाली बाड़ है। उनकी मधुर-स्मृति उस वृक्ष का बौर है और अमरत्व ही उस वृक्ष का फल है, जिसमें प्रेमरूपी रस भरपूर है। प्रेम रस से भरपूर अमर फल पाकर ही प्राणी कृतकृत्य होता है।"**

मानव-सेवा-संघ के साहित्य में गुरु-तत्व पर रूढ़ि-मुक्त विचार हैं, शरीर में गुरु-बुद्धि स्वीकार नहीं की है। ज्ञान एवं विवेक का प्रकाश गुरुतत्व के रूप में मानव-मात्र को सर्वदा प्राप्त है। गुरु और सत्य अभेद हैं। सत्य को स्वीकार करना ही गुरु-तत्व से अभिन्न होना है। संघ के शब्दों में-**"शरीर में गुरु-बुद्धि और गुरु में शरीर-बुद्धि भारी भूल है, क्योंकि गुरु-तत्व अनन्त ज्ञान का भंडार है। गुरु-तत्व अनादि, अनुत्पन्न तत्व है। गुरु, हरिहर और सत्य में कोई भेद नहीं।"**

मानव-सेवा-संघ साहित्य में प्रेम-तत्त्व का विवेचन करते हुए बताया है कि ''प्रेमी और प्रेमास्पद अभिन्न हैं। प्रेमास्पद स्वयं ही अपना प्रेमी बना लेते हैं। उनके प्रेम का वारापार नहीं है। प्रेमदाता प्रेम देकर प्रेमी बना रहे हैं। प्रेमी होकर प्रेमी बनाना ही उनका स्वभाव है। प्रेमास्पद ही वास्तव में प्रेमी है।'' प्रेम को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता-''प्रीति किसी भाषा तथा भाव के द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती और न बिना कुछ कहे रहा ही जाता है। यह प्रीति की विलक्षणता है।'' **प्रेम-तत्त्व की पराकाष्ठा इसी में है कि 'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, सब कुछ प्रभु का है' तथा कोई 'गैर' नहीं कोई 'और' नहीं।**

जब मानव का अहम् शुद्ध होकर प्रेम की धातु में बदल जाता है तब उसका अपना करके कुछ नहीं रहता और समस्त सृष्टि में वह अपने प्रिय को ही पाता है-

''हूँ तो देखौं पीव कौं सब में रह्या समाय।''
''तन, मन नाहीं, मैं नहीं, नहिं माया नहीं जीव,
दादू एकै देखिये दस दिस मेरा पीव।''

भाषा एवं रस की दृष्टि से स्वामी शरणानन्द-साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि इन्होंने अनेक शब्दों को नवीन अर्थ में प्रस्तुत किया है। **इस दृष्टि से इन्हें नवीन शब्दों का जनक भी कह सकते हैं।** जैसे- 'नित्य-योग', 'नित्य-जागृति', 'नित्य-जीवन', 'नित्य-नवप्रियता', 'मधुर स्मृति', 'अखण्ड प्रियता' आदि अनेक शब्द उनकी अनुभूत वाणी से निः सृत हैं। इनका उद्देश्य जन-मन तक अपना सन्देश पहुँचाना है न कि साहित्यिक सौष्ठव। फिर भी दिव्य-रस की आर्द्रता एवं जन-जीवन के उत्थान की आतुरता सहृदय के हृदय को द्रवीभूत किये बिना नहीं रहती। **इन्होंने कथ्य के सहारे अकथ्य को कह डाला, यही उनकी वाणी का चरमोत्कर्ष है, और यही उनकी भाषा की सक्षमता है।** उनकी भाषा

अनुभूति को अभिव्यक्त करने का माध्यम-भर ही नहीं, अपितु जीवन की भास्वरता एवं अन्तः स्थल को स्पर्श करने वाली है, जो पाठक के हृदय के साथ तादात्म्य कर लेती है। यही इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'साधारणीकरण' इनके साहित्य में विद्यमान है। इनकी भाषा में ऐसी जीवन्तता है जो सहृदय के हृदय को एकबारगी भाव-विभोर कर उसी रस में डुबो देती है। अहम्-शून्य स्थिति की मूक-भाषा पाठक को भी एकबारगी मूक बना देती है।

मानव-सेवा-संघ साहित्य के प्रणेता-संत ने अपने साहित्य में उसी रस का उल्लेख किया है जो रस इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे है। देहातीत जीवन या प्रियता की जागृति से इस रस का उदय है। अपने प्रेमास्पद से अभिन्न हो जाना इस रस की अनन्तता है। वह रस है—प्रियता का रस। जो रस अनन्त है एवं अनन्त का स्वभाव है उसकी परिणति कहाँ? वह रस तो क्षति, पूर्ति, निवृत्ति से रहित है। ऐसा रस ही जीवन की माँग हो सकती है। संघ की भाषा में रस एवं उसकी प्रियता से सम्बन्धित कुछ हृदयस्पर्शी उदाहरण द्रष्टव्य हैं-**'प्रियता की जागृति में ही रस की अभिव्यक्ति है। रस की अभिव्यक्ति में ही जीवन की पूर्णता है—रस अनन्त का स्वभाव है और मानव की माँग है।''**

''रस की माँग ही जीवन की माँग है। रस देने में ही रस की वृद्धि है। रस की वृद्धि में ही रस का दान है। रस के आदान-प्रदान में ही वास्तविक जीवन है।''

''आत्मीय सम्बन्ध में ही प्रियता है और प्रियता ही भक्ति-रस है। वह ऐसा अनुपम रस है जिसकी माँग भगवान् को भी है और भक्त को भी। शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण आदि पर उन्हीं की सील (मोहर) लगा दो। उत्तरोत्तर प्रियता बढ़ती रहे। प्रियता वास्तव में क्षति, पूर्ति, निवृत्ति से रहित नितनव है।''

मानव-मन के पारखी सन्त ने व्यक्तित्व की बनावट के आधार पर रस की श्रेणियाँ निर्धारित कीं एवं रस को जीवन की माँग बताया। इस कारण जीवन और रस अविभाज्य हैं। संघ की दृष्टि से-**"जीवन और रस का विभाजन नहीं हो सकता अर्थात् जीवन में रस और रस में जीवन है। जीवन नित्य है और रस अनन्त जिज्ञासा, जीवन का प्रतीक है और प्रेम रस का।"** अतः कोई भी मानव भौतिकवादी हो, अध्यात्मवादी हो, या ईश्वरवादी हो रस-रहित जीवन नहीं जी सकता। **भौतिकवादी व्यर्थ-चिन्तन से मुक्त होकर अर्थात् अचिन्त्य होकर शान्त रस को पाता है, अध्यात्मवादी अनित्य से असंग होकर अखण्ड रस पाता है एवं ईश्वरवादी आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार कर शरण्य के समर्पित होकर अगाध, अनन्त रस पाता है।** संघ की भाषा में-"उदारता में करुणा एवं प्रसन्नता का रस, अचाह में शान्त रस तथा असंगता में अखण्ड रस एवं आत्मीयता में अगाध अनन्त नित-नव रस विद्यमान है। रस ही एकमात्र जीवन की माँग है।" "योग में शांत, बोध में अखण्ड तथा प्रियता में अनन्त रस है। शांत और अखण्ड रस के आश्रित अहम्-भावरूपी अणु जीवित रहता है..... जब असंगता अभिन्नता में परिणत हो जाती है तब एकमात्र अगाध प्रियता ही रह जाती है। अनन्त की प्रियता अनन्त के लिए रस रूप है।" इस प्रकार संघ की दृष्टि से प्रियता का अनन्त रस ही प्रथम कोटि का है। शान्त और अखण्ड रस अनन्त रस तक पहुँचने की सीढ़ी हैं। **रस का चर्मोत्कर्ष तो अनन्त रस ही है, क्योंकि वह नित्य-नवीन है।**

मानव-सेवा-संघ ने जीवन दर्शन एवं साहित्य का विभाजन नहीं किया, क्योंकि उनके जीवन का अनुभूत सत्य ही दर्शन बना एवं दर्शन से ही उनके साहित्य का उद्भव हुआ। मानव-सेवा-संघ का दर्शन किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं जुड़ा है। वह तो एक ऐसा सार्वभौम सत्य है जो व्यक्ति या सम्प्रदाय की सीमाओं से परे विश्व-हृदय की अनुभूति से जुड़ा है। प्रत्येक हृदय अपने को समस्त सीमाओं से मुक्त करके उस अनुभूति को

सहज रूप में अपनी बना सकता है। उन्होंने एक ऐसा मंच तैयार किया जहाँ सभी धर्मावलम्बी समस्त संकीर्णता को पार कर ऐसे मिलन-बिन्दु की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखते हुए विचार-विनिमय द्वारा जीवन के सत्य का मार्ग अपना लें। सभी के मत को आदर देते हुए उन्होंने कहा - **'दर्शन अनेक हैं पर जीवन एक है।''**

उन त्रिगुणातीत सन्त के दिव्य व्यक्तित्व व कृतित्व को भाषा की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। सब कहकर भी कुछ न कहना ही शेष है। ज्ञान, कर्म एवं प्रेम के अद्भुत संगम वाला व्यक्तित्व हर दृष्टि से पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। हमारे क्षुद्र शब्द, सीमित भाषा, सीमित बुद्धि उस असीम को कैसे बाँध सकते हैं? किन्तु वह असीम हमारे सीमित एवं अनेक अभावों से युक्त व्यक्तिव को भी अपनी ओर खींच रहा है। यही उसकी महिमा है। उनकी महिमा अपरम्पार है, उसको जान भी कौन सकता है? यदि किसी वीर साहसी ने उस असीम उदधि की गहराई में गोते लगाने का साहस कर भी लिया तो सन्त कबीर की तरह उसकी भी यही दशा होती है-

'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय,
बूँद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय।'

- कु. गंगा डांगा

❖❖❖

जीवन-दर्शन

(67)

(संत-वाणी)

(१)

मानव जीवन की परिपूर्णता

शरीर विश्वरूपी वाटिका की खाद बन जाय
अहं अभिमान शून्य हो जाय, तथा
हृदय प्रभु प्रेम से परिपूर्ण हो जाय
इसी में मानव जीवन की परिपूर्णता है।

(२)

दुनियाँ का बड़ा आदमी

देखो! दुनियाँ में बड़ा आदमी कौन होता है? जो दूसरों की जरूरत को अपनी जरूरत मानता है। जिसके सभी संकल्प प्रभु के संकल्प में या जगत् के संकल्प में विलीन हो गए हैं। जिसका अपना कोई संकल्प नहीं होता वह प्रत्येक परिस्थिति में चिर शांति में वास करता है। उसमें यह बातें होती हैं -

१. वह योग्य होता है,
२. वह ईमानदार होता है,
३. परिश्रमी होता है,
४. उदार होता है,

५. स्वाधीन होता है, तथा
६. प्रेमी होता है।

(३)

भोग की रुचि का नाश

जिसके जीवन में पर-पीड़ा होती है उसके जीवन में करुणा की धारा अविरल बहती है। करुणा के रस से भोग की रुचि का नाश स्वतः हो जाता है।

(४)

कार्य उसीके सिद्ध होते हैं जो
जगत् के काम आता है।

(५)

प्रीति	का	क्रियात्मक रूप है	**सेवा**
		विवेकात्मक रूप है	**त्याग**
	तथा,	भावात्मक रूप है	**प्रेम**

(६)

प्रियता से तो आनंदकंद भी आनंदित होते हैं, यह प्रीति की महिमा है।

(७)

जगत् उदार है, प्रभु करुणा सागर हैं।

(८)

जिसकी अपनी कोई चाह नहीं होती,
उसकी चाह सबको होती है।

(९)

अपना सुख बाँटने से, अपना सुख बढ़ता है तथा
दूसरों का दुःख बंटाने से, अपना दुःख घटता है।

(१०)

जो आदर के योग्य होता है,
उसमें आदर पाने की वासना नहीं रहती।

(११)

दूसरों को आदर वही दे सकता है,
जो स्वयं आदर के योग्य हो।

(१२)

प्रश्न : महाराज! वैकुंठ किसे कहते हैं?

उत्तरः जिस घर में कुंठा नहीं हो, वहीं वैकुंठ होता है।

(१३)

प्रश्नः महाराज! ब्रजधाम किसे कहते हैं?

उत्तरः जिस व्यक्ति या स्थान की सन्निधि में शीतलता की अनुभूति हो, प्रीति व अपनेपन की भावना जागृत हो, उसे ही ब्रजधाम कहते हैं।

(१४)

मानव का अहंरूपी अणु जब पिघल जाता है तब उन सामर्थ्यवान् में भी यह सामर्थ्य नहीं रहता कि वे उसका परित्याग कर सकें।

(१५)

कुछ न चाहो काम आ जाओ

चाह लेकर परमात्मा के पास जाने पर परमात्मा भी संसार हो जाता है तथा अचाह होकर संसार में रहने पर संसार भी परमात्मा बन जाता है।

(१६)

स्वाधीनता

जब तुम स्वाधीन हो जाओगे तो सारी सृष्टि तुम्हारी सेवा के लिए लालायित रहेगी। चराचर जगत् तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर रहेगा। वृक्ष तुम्हें फल-फूल देंगे। बब्बर शेर तुम्हें गोद में लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

(१७)

मानवता

संसार की सेवा का अर्थ है संसार से मिली हुई वस्तुएँ संसार को भेंट कर देना अथवा यों कहो कि ईमानदार हो जाना, जो वास्तव में मानवता है।

(१८)

चैन से रहना चाहते हो तो काम को जमा मत रखो।

❖❖❖

'तरुतले' – भाग 1

प्रथम संस्करण पर प्राप्त सम्मतियाँ

(1)

.... सचमुच यह एक अद्‌भुत पुस्तक है। एक बार पढ़ने के बाद पूरी किए बिना चैन नहीं पड़ता। एक महान् संत का सान्निध्य प्राप्त होता है। इस पुस्तक का कितना भी बखान किया जाए, कम ही रहेगा। ऐसा लगता है, अपने स्नेहीजनों को भी यह किताब पढ़ाऊँ, लेकिन श्री गौतमभाई का पढ़ना बाकी था इसलिए मैंने उसे पूरी पढ़कर उन्हें वापस लौटा दी। किसी–किसी प्रसंग को तो मैंने बार–बार पढ़ा।...

.... शास्त्र में तीन 'भाग्य की बात' का उल्लेख आता है – मनुष्य–जन्म, महापुरुष संश्रय और मुमुक्षत्व। आप लोगों को तीनों मिले हैं। आगे का मार्ग भी आपको प्रभु दिखाएगा। 'तरुतले' किताब भाग–1 के अलावा और भी भाग होंगे। इसके अलवा स्वामी शरणानंदजी का और कुछ साहित्य उपलब्ध हो तो भेजने की कृपा कीजिए।...........

.... स्वामी श्री शरणानंदजी का साहित्य पढ़ने की बहुत इच्छा हो रही है। इनका विचार विनोबाजी के विचार के साथ काफी मिलता है। सबको प्रणाम।

मीनु बहन

ब्रह्म विद्या मंदिर पवनार (वर्धा)

(2)

'तरुतले' पढ़कर स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के दर्शन व साहित्य की छटा आँखों के सामने छा गई7 मेरी ओर से इस पुस्तक की 1000 प्रतियाँ छपवा कर जनता जनार्दन में वितरित करने की कृपा करें।

साधु कैलाश मानव
नारायण सेवा संस्था, उदयपुर

(3)

'तरुतले' पढ़कर मैं आनंद से भर गया। मैं एक सप्ताह बाद विदेश जा रहा हूँ। वहाँ स्वामी शरणानंदजी महाराज के साहित्य का अध्ययन करना चाहता हूँ। कृपया उनकी कुछ पुस्तकें मुझे भेजें।

बाबूलाल गुप्ता
(रत्न व्यवसायी)
मालवीय नगर, जयपुर

(4)

'तरुतले' में प्रकाशित छोटे-छोटे संस्मरणों को सहजता से पढ़ने में रुचि उत्पन्न होती है तथा रोचक एवं शिक्षाप्रद होने के कारण, मानव के जीवन की धारा सच्चे मार्ग परचलने को प्रेरित करती है। इस तरह के प्रयास भविष्य में भी होते रहें, तो मानव उसकी महिमा से अवगत होकर, उससे अविनाशी जीवन प्राप्त करने की प्रेरणा लेते रहेंगे।

जे.सी. अग्रवाल
ए-24, अनिता कॉलोनी
बजाज नगर, जयपुर

(5)

मानव सेवा संघ का साहित्य पढ़ने व दर्शन को हृदयंगम करने की रुचि उत्पन्न करने के लिए 'तरुतले' का यह संकलन अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसा मेरा मानना है। प्रयास जारी रखें।

पृथ्वीराज सोई
3/24 विष्णुपुरी, कानपुर

प्राकृत भारती अकादमी

१३-ए, मेन मालवीय नगर, जयपुर - ३०२०१७

दूरभाष - २५२४८२७, २५२०२३०

Email C/o <prabharati@datainfosys.net>

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
१.	सचित्र कल्पसूत्र (तृतीय संस्करण)	सं० म० विनयसागर	१०००.००
३.	प्राकृत स्वयं शिक्षक चतुर्थ संस्करण	डॉ० प्रेम सुमन जैन	१२०.००
१०.	*गणधरवाद	म० विनयसागर	५०.००
२५.	प्राकृत गद्य सोपान	डॉ० प्रेम सुमन जैन	
२६.	अपभ्रंश और हिन्दी	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	३०.००
२९.	एस्ट्रोनोमी एण्ड कॉस्मोलोजी (अंग्रेजी)	प्रो० एल० सी० जैन	१५.००
३०.	*नॉट फार फ्रॉम द रिवर (अंग्रेजी)	डेविड रे	५०.००
३३.	समणसुत्तं चयनिका (पंचम संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	३०.००
३७.	दशवैकालिक चयनिका (द्वितीय संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२५.००
३८.	रसरत्नसमुच्चय (अंग्रेजी)	डॉ० जे० सी० सिकदर	१५.००
४१.	गौतमरासः परिशीलन	म० विनयसागर	१५.००
४२.	अष्टपाहुड चयनिका (पंचम संस्करण)	डॉ० के० सी० सोगाणी	२०.००
४३.	अहिंसा (अंग्रेजी) द्वितीय संस्करण	सुरेन्द्र बोथरा	१२५.००
८३.	सचित्र जिनदर्शन चौबीसी (तृतीय संस्करण)	सं० म० विनयसागर	१००.००
११५.	भक्तामर स्तोत्र (सचित्र) (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)	अ० श्रीचन्द सुराणा 'सरस', सुरेन्द्र बोथरा	३२५.००
११६.	स्टडीज इन जैनोलोजी, प्राकृत लिटरेचर एण्ड लेंगवेजेज (अंग्रेजी)	डॉ० बी० के० खड़बड़ी	३००.००
१४५.	आस्रव-संवर तत्त्व	कन्हैयालाल लोढा	१००.००
१४९.	द बेसिक थॉट ऑफ भगवान् महावीर (अंग्रेजी)	डॉ० जय कुमार जलज	१५.००
१५०.	सरमद की रुबाईयाँ (फ़ारसी, हिन्दी)	मुश्ताक अहमद राकेश	१२०.००
१५१.	प्रतिष्ठा लेख संग्रह भाग - २	म० विनयसागर	१५०.००
१५२.	श्रीमद् देवचन्द्रः समग्र अनुशीलन	साध्वी डॉ० आरतीबाई	१७०.००
१५४.	सुबोध शतक	न्यायाधीश जसराज चौपड़ा	१००.००

नोट -- * चिह्नित पुस्तकों पर २० % अतिरिक्त विशेष छूट।

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/ सं०/ अनु०	मूल्य
१५५.	नलचम्पू और टीकाकार महो० गुणविनय: एक अध्ययन	म० विनयसागर	१००.००
१५६.	सुबोध शतक भाग - २	न्यायाधीश जसराज चौपड़ा	६०.००
१५७.	जनसेवा: प्रभु सेवा	महेश नारायण भारद्वाज	१०.००
१५८.	अर्हत्	बशीर अहमद 'मयूख'	१००.००
१५९.	हिमालय की पद यात्रा	म० विनयसागर	३०.००
१६०.	ज्योति पथ	बशीर अहमद 'मयूख'	
१६१.	खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास (प्रथम)	म० विनयसागर	६००.००
१६२.	भगवान् महावीर का बुनियादी फिक्र (उर्दू)	अ० मुश्ताक अहमद राकेश	२५.००
१६३.	श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ	म० विनयसागर	
१६४.	भ० म० का बुनियादी चिन्तन (गुजराती)	डॉ० जयकुमार जलज	
१६५.	शत्रुंजय वैभव	मुनि कान्ति सागर	
१६६.	भ० म० का बुनियादी चिन्तन (मराठी)	डॉ० जयकुमार जलज	२०.००
१६७.	अहिंसा	डॉ० एन० पी० जैन	२५०.००
१६८.	प्राकृत साहित्य की रूपरेखा	डॉ० तारा डागा	
१६९.	करुणा का झरना, वर्तमान युग में जैन दर्शन	डॉ० एन० पी० जैन	२५०.००
१७०.	साकारात्मक अहिंसा शास्त्रीय और चारित्रिक आधार	कन्हैयालाल लोढ़ा	२००.००
१७१.	जिन वल्लभसूरि ग्रन्थावली	म० विनयसागर	२६०.००
१७२.	कर्म सिद्धान्त	कन्हैयालाल लोढ़ा	१५.००
१७३.	देह और मन से परे	रणजीत सिंह कुमट	८०.००
१७४.	गाँधी	डी०सी० शर्मा	८०.००
१७५.	दी कैट हू स्टेड होम (अंग्रेजी)	क्रिस्टील रोज़र	१००.००
१७६.	सुबोध शतक भाग - ३	न्यायाधीश जसराज चौपड़ा	१२५.००
१७७.	मेरे राम : और राम का काम	महेश नारायण भारद्वाज	१००.००
१७८.	The Tao The Ching	Shir Sanjay Misra	150.00
१७९.	दु:खं रहित सुख	कन्हैयालाल लोढ़ा	१००.००
१८०.	जैन विभूतियाँ	मांगीलाल भूतोड़िया	५००.००
१८१.	धर्म शिक्षा प्रकरण	म० विनयसागर	१००.००
१८२.	खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह	म० विनयसागर	६००.००
१८३.	अख़लाके मुहसिनी	एम०ए० राकेश	
१८४.	शुभशीलशतक	म. विनयसागर	१५०.००
१८५.	तिर रही वन की गंध	डा० मुकुन्द लाठ	२५०.००
१८६.	साकारात्क अहिंसा (संक्षिप्त रूप)	कन्हैयालाल लोढ़ा	
१८७.	सुबोध शतक (भाग ४)	न्यायाधीश जसराज चौपड़ा	
१८८.	Jainism: The Creed for All Times	Shir Dalpat Sing Baya	

पु.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक / सं० / अनु०	मूल्य
१८९.	भगवान् महावीरर मूलभूत चिन्तन (कन्नड़)	डॉ० जयकुमार जलज अनु. श्रीमती इन्द्रा हेगड़े	२५.००
१९०.	कैंसर : एक सतत् प्रयास	सुधीन्द्र गेमावत	१००.००
१९१.	वीरस्तुति (वीरत्थुई)	डॉ० तारा डागा	४०.००
१९२.	Nutrition & Supplements in Major Mental Illnesses	Dr. Ratan Singh	
१९३.	Animal story	Chirstine Townend	100.00
१९४.	GLOBAL PHILOSOPHICAL AND ECOLOGICAL CONCEPTS	Dr. Rudi Jansma	
१९५.	ब्रह्मदत्तजी शर्मा	श्री शान्तिस्वरूप गुप्ता	
१९६.	स्वतंत्रता संग्राम की विभूतियाँ : श्री सिद्धराज ढड्ढा विचार एवं जीवन यात्रा	डॉ० अवध प्रसाद	५०.००
१९७.	भगवान् करुणासिन्धो..... (हिन्दी)	सुरेन्द्र बोथरा	
१९८.	Environment -Ethics	S.M. Jain	
१९९.	तरुतले	श्री शान्तिस्वरूप गुप्ता	
२००.	बोध प्रदीप	म० विनयसागर	००.००
२०१.	खरतरगच्छ साहित्य कोश	म० विनयसागर	००.००
२०२.	ध्यान शतक	कन्हैयालाल लोढ़ा डॉ० सुषमा सिंघवी	८५.००
२०३.	इन्द्रधनुष	सुधीन्द्र गेमावत	
२०४.	तत्त्वार्थसूत्र	सी.एल. जैन	
२०५.	वीतराग योग		
२०६.	जैन धर्म में ध्यान		
२०७.	संगीतौषध	प्रभुशरण महता	
२०९.	बापू के प्रेरक प्रसंग (संस्मरण)	डॉ. धर्मेन्द्रकुमार कांकरिया	
२१०.	कन्फ्यूश्यस ने कहा	संजीव मिश्र	
२११.	सचित्र उपासक दशांग सूत्र		
२१२.	राइअ-देवसिअ प्रतिक्रमण सूत्र	मणिप्रभ सागरजी	
213.	Introduction to Jainism	Rudy Jansma	400.00
२१४.	कायोत्सर्ग	कन्हैयालाल लोढ़ा	
२१५.	ध्यान से स्वबोध	आर.एस. कुमट	
217.	Sorrowless Joy	K.L. Lodha Translated By K.K. Saxena	
218.	Experiments in Moral Sovereignty	Jeff Cannabal	
220.	Historicity of 24 Jain Tirthankars	Mangilal Bhutoria	
२२१.	सुबोध शतक - ५	न्यायाधिपति जसराज चौपड़ा	

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग

13ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर, जयपुर